विज्ञान

अक्टूबर 1992 अंक
मूल्य : 2 रु० 50 पैसे
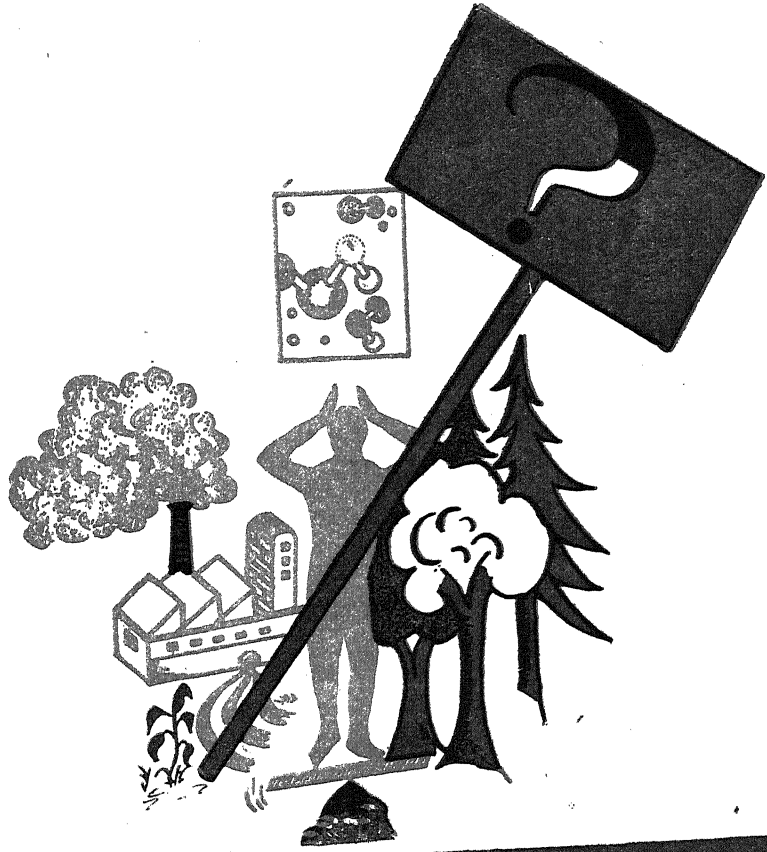
विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

अक्टूबर 1992; वर्ष 78 अंक 7

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०

वार्षिक : 25 रु०

एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7 ए बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

राष्ट्र के विकास में वैज्ञानिक सोच की भूमिका

श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी

बीसवीं शती के इस अंतिम दशक में, जब विज्ञान का वर्चस्व सर्वतोसिद्ध हो चुका है, तब इस विषय पर विवाद करना मेरी दृष्टि में व्यर्थ ही है, कि विज्ञान की भूमिका किसी भी देश की प्रगतिशील संरचना में गुणात्मक है या नकारात्मक। दुर्बुद्धिजन्य उद्देश्यों के लिए यदि प्रयोग न किया जाये, तो विज्ञान का योगदान हर दृष्टि से विकास के लिए धनात्मक ही सिद्ध होगा, यह एक निर्विवाद सत्य है। प्रश्न यह है कि राष्ट्र के विकास में वैज्ञानिक चिंतन लाभकारी भूमिका कैसे निभा सकता है।

हमारे धर्मप्राण देश भारत में विज्ञान या वैज्ञानिक चिंतन, प्राचीन काल में धर्म के समानान्तर सामाजिक विकास का सोपान बनता रहा, भले ही धर्म विचारों के यथावत मानने पर जोर देता रहा और विज्ञान परीक्षण और तर्क की कसौटी पर खरे उतरे विचारों को ही अपनाता रहा। फिर भी, यह बाह्य विरोधाभास होते हुए भी दोनों विरोधी नहीं रहे। सच्चे धर्म का स्वरूप भी, और यहाँ मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि कर्मकाण्ड नहीं, सदा वैज्ञानिक आधारों पर ही गढ़ा गया है। ज्यों-ज्यों भौतिक रहस्यों पर से पर्दा हट रहा है, धर्मग्रन्थों में कहे अनेक वक्तव्यों की पुष्टि स्वत: होती जाती है।

हमारे प्राचीन मनीषी ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर और भास्कराचार्य के वैज्ञानिक और गणितीय सिद्धांत देश के विकास की रीढ़ हैं यह अवश्य दु:ख का विषय है कि आगे चलकर, यूरोपीय प्रभाव से, हमारा स्वतन्त्र वैज्ञानिक चिंतन अवरुद्ध होने लगा और भौतिक विकास और प्रौद्योगिक उपलब्धियों को ही विज्ञान का पर्याय माना जाने लगा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे देश में वैज्ञनिक सोच को गति देने का कार्य तत्कालीन प्रधानमंत्री की वैज्ञानिक नीति के निर्माण से प्रारम्भ हुआ। 1952 में इस नीति की घोषणा से गुलामी की मार से आई जड़ता को उतार फेंकने की शुरुआत हुई। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में प्रतिवर्ष भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन और उसमें प्रतिवर्ष स्वदेशी संदर्भ में लोककल्याण के किसी केन्द्रीय विषय पर चर्चा और कार्यवाही की परम्परा से इस कार्य को बहुत बल मिला।

इसके पूर्व वैज्ञानिक चिंतन द्वारा देश के विकास को समृद्ध करने का कार्य कुछ नई-पुरानी वैज्ञानिक समितियाँ भी, अपनी-अपनी सीमाओं में ही सही, पर सार्थक ढंग से करती आ रही थीं। इनमें पिछली शताब्दियों की रायल सोसाइटी, रायल एग्रीकल्चरल सोसाइटी, इण्डियन इंजीनियरिंग सोसाइटी, और बाम्बे टेक्सटाइल एण्ड इंजीनियरिंग एसोसिएशन की भूमिकाएँ महत्वपूर्ण रहीं। इस शताब्दी की समितियों में एसोसिएशन फॉर कल्टीवेशन ऑव साइंस, इण्डियन बोटैनिकल सोसाइटी, इण्डियन मैथमेटिकल सोसाइटी, इंस्टीट्यूशन ऑव इंजीनियर्स, इण्डियन एकेडेमी ऑव साइंसेज, इण्डियन फिजिकल सोसाइटी और विज्ञान परिषद् प्रयाग जैसी प्रतिष्ठित समितियों ने विशेषज्ञों

5 ई/4 स्टाफ क्वार्टर्स, लिटिल रोड, जार्ज टाउन इलाहाबाद-2

को अपने-अपने क्षेत्र की शैक्षिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने और उनके समुचित समाधान के लिए प्रेरित करने को एक मंच दिया। इन समितियों की भूमिकाएँ इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इन समितियों ने सामान्य विचार-विमर्श के अतिरिक्त अपने-अपने क्षेत्रों में सक्रिय शोध करने के भी उचित अवसर जुटाये। इन समितियों के समृद्ध और अधुनातन पुस्तकालयों, सामयिक परिसंवादों और विचार-गोष्ठियों ने जहाँ विज्ञान के विशिष्ट स्वरूप की और विशुद्ध अनुसंधानों को दिशा दी, वहीं विज्ञान की सामान्य रुचि की पत्रिकाओं ने विज्ञान के जनसाधारण में प्रचार-प्रसार को सुलभ किया। इस प्रकार देश की सामाजिक चिंतन की धारा को ये वैज्ञानिक समितियाँ प्रभावित करती रही हैं।

भारतीय समाज की विसंगतियाँ यथा गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वासों को देखते हुए वैज्ञानिक सोच की प्रासंगिकता और भी अनिवार्य जान पड़ती है।

शिक्षा के क्षेत्र में यदि हम वैज्ञानिकता की बात करें तो ऐसा लगता है कि अभी मील का पत्थर हमसे बहुत दूर है। नई शिक्षा नीतियों की बात तो दस-पाँच वर्षों पर दोहराई जाती ही रहती है, पर सच्चाई मात्र इतनी है कि हमारी शिक्षा, वैचारिकता, मौलिकता को कुण्ठित करके सुने-सुनाये, रटे-रटाये को यथावत पुनः कागज पर उतार देने का प्रयास मात्र है। हम न तो प्राथमिक स्तर पर, न उच्च शिक्षा के स्तर पर—कहीं भी स्वतंत्र चिंतन या तार्किक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करते। इस स्थिति में यहाँ वैज्ञानिक सोच के आरोपण की आवश्यकता तीव्रतम है। विद्यार्थी में निष्ठापूर्वक किताबी ज्ञान को दोहराने की जगह स्वयं सोचकर तर्कों के प्रमाण के सहारे किसी प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने की उसकी कितनी क्षमता है, इस आधार पर उसका मूल्यांकन करना और उसकी यह क्षमता विकसित करने का प्रयत्न करना, उसमें जिज्ञासा की भावना को बढ़ावा देने की नीति अपनाना आवश्यक है।

हमारे देश की अनेक विज्ञान प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में विश्व स्तर का शोध कार्य हो रहा है। अब समय और वैज्ञानिकता का तकाजा यह है कि इन अनुसंधानों का सीधा लाभ अपने देश की गरीब जनता तक पहुँच सके। इसके लिये ऐसी तकनीकी का विकास आवश्यक है, जो क्षेत्र विशेष की निजी आवश्यकताओं के अनुरूप हो। जैसा कि **श्रीमती इन्दिरा गाँधी** ने कहा—'कोई तकनीकी कितनी भी आधुनिक और कितनी भी लाभदायी क्यों न हो, उसे स्थानीय संस्कृति और प्रतिभा के अनुसार ढालना पड़ेगा ताकि परम्पराओं में सुव्यवस्थित ढंग से नवीनता आ सके।'

पाठ्यक्रम के वर्तमान वैज्ञानिक खोजों की उपलब्धियों के अतिरिक्त उन बातों का समावेश आवश्यक है, जो विद्यार्थी को बताती चलें कि विज्ञान का अर्थ क्या है उसकी प्रगति की दिशा क्या है और वर्तमान वैज्ञानिक चिंतनधारा मानव समाज को किधर ले जाने वाली है। यह देश के सामान्य जन को देश की संरचनात्मक प्रक्रिया से सकारात्मक रूप से जोड़ने में बहुत सहायक होगा।

ज्ञान अथवा विज्ञान चूँकि निरन्तर परिवर्तनशील प्रक्रिया है अतः वैज्ञानिकता का पोषण एक गतिशील जीवित समाज की संरचना के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। अन्यथा रूढ़ियों और अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा समाज सड़ने लगता है। अतः नये को जाँच-परखकर, उसकी सार्थकता को समझकर उसे अपना लेना और अप्रासंगिक हो गये पुराने को केंचुल की भाँति त्याग देने की क्षमता विकसित कर लेना विकास को गति देना है।

अब तक हम वैज्ञानिक सोच या चिंतन की बात करते रहे हैं, वैज्ञानिक उपलब्धियों की भूमिका की दृष्टि से देखें तो हम पायेंगे कि वैज्ञानिकता या वैज्ञानिक शोधों से उत्पन्न उपलब्धियों, तकनीकों ने देश की प्रगति को तीव्र करने का जो कार्य किया है, वह अभूतपूर्व है। प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, अंतरिक्ष विज्ञान, मौसम अनुसंधान, रसायन और सबसे बढ़कर कृषि के क्षेत्र में विज्ञान का योगदान इतना गुणात्मक रहा है, जिसकी तुलना में पिछली कई सदियों की सम्मिलित वैज्ञानिक प्रगति भी कम प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए कृषि के क्षेत्र में कुछ दशकों पहले खाद्यान्न के लिए दूसरे देशों का मुँह देखने वाला भारत आज स्वयं समर्थ है और इसका श्रेय विज्ञान की सहायता प्राप्त उन्नतबीजों, संशोधित कृषि उपकरणों, कीटनाशकों और दूसरी लाभकारी तकनीकों को जाता है। पर यहीं रुककर यह सोचने की भी आवश्यकता है कि अधिक से अधिक फसल लेने की दौड़ में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के के अंधाधुंध उपयोग से निरन्तर अपनी स्वाभाविक गुणवत्ता से क्षीण होती जा रही भूमि के संवर्धन के लिए क्या करना उचित है? वैज्ञानिकतापूर्ण विचार प्रणाली पर चलने का अर्थ यही है कि हम साधन या उद्देश्य दोनों के अच्छे-बुरे सभी पहलुओं पर सर्वतोन्मुखी विचार करके निर्णय लेने का प्रयास करें।

वर्तमान के लिए प्रासंगिक दृष्टिकोण यही है कि देश में उत्कृष्ट वैज्ञानिक प्रतिभा उपलब्ध है और उसका उचित उपयोग होना चाहिये। इसके लिए स्वयं वैज्ञानिकों को अपने गगनचुंबी मीनारों से नीचे उतर कर आम आदमी के सम्पर्क में आना और उसकी दृष्टि के समानान्तर नजर साधकर देखना पड़ेगा। जेनेटिक इंजीनियरिंग, बायोटेक्नॉलोजी और इलेक्ट्रॉनिक्स के विकास आम आदमी के जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते ही हैं अतः इन क्षेत्रों में शोधों की दिशा ऐसी होनी आवश्यक है जो लोकहित में हो। साथ ही एक और तथ्य को नजर-अंदाज करना उचित नहीं होगा, वह है कुछ वैज्ञानिक शोधों का वैधानिक पक्ष। उदाहरण के लिए भ्रूण-परीक्षण तकनीक के सर्वसुलभ होने के दुष्परिणामों से आज हम लोग अनजान नहीं हैं। अविकसित व्याधिग्रस्त भ्रूण के विषय में समय रहते पता लगाकर उसे समाप्त करने या उसकी उचित चिकित्सीय व्यवस्था करने की लोकोपयोगी तकनीक को आज हमारी सामाजिक कुरीति के दबाव ने कन्या भ्रूणों की निमर्म हत्या की दुष्प्रवृत्ति में बदल डाला है। इस प्रकार के दुरुपयोग चेतावनी देते हैं और इसका अर्थ यह है कि हमें इस प्रगति पर आवश्यकतानुसार अंकुश लगाने की जरूरत है, पर इसे बाधित करने की कदापि नहीं है।

आज हमने वैज्ञानिक क्षेत्रों में निश्चित रूप से प्रगति की है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। जैसा कि पहले ही कहा गया—बायोटेक्नॉलोजी, कृषि तकनीक, रसायन, चिकित्सा, अंतरिक्ष विज्ञान जैसे क्षेत्रों में हमने आशातीत सफलताएँ प्राप्त की है। दूर संचार उपग्रहों की सहायता से देश की संचार व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव आया है। दूरदर्शन द्वारा सामाजिक गठन पर पड़ने वाले प्रभाव विवादास्पद हो सकते हैं पर सूचनाप्रद त्वरित माध्यम के रूप में उसकी भूमिका अद्वितीय रही है।

दूर संवेदन की उपलब्धियों ने मौसम विज्ञान और कृषि के लिए लाभप्रद अग्रिम सूचनायें उपलब्ध कराकर कृषकों की भारी सहायता की है। आज भारतीय वैज्ञानिक अंटार्कटिका तक अपनी योग्यता के झंडे गाड़ चुके हैं। पिछले लगभग एक दशक से हर साल जाने वाले अंटार्कटिका अभियान दल के वैज्ञानिक सदस्य अब तक तो वहाँ एक स्थायी वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र भी स्थापित कर चुके हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या जो आज सारे विश्व को ग्रस्त किए हुए हैं, अपने देश में भी कम भयानक नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि के प्रभाव में हम अपनी प्राकृतिक सम्पदाओं का अनवरत शोषण कर रहे हैं और प्रकृति को पुनर्स्थापन का अवसर दिये बिना ही उस पर अत्याचार किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में भी सोच-समझकर विज्ञान सम्मत तरीके से कदम उठाने की आवश्यकता है, जिससे हम धसकते पहाड़ों पर बाँध बनाकर वहाँ के जन-जीवन को जोखिम में डालने तथा हरे-भरे मैदानों को नदियों की जलधारें मोड़कर अनन्त जलाशयों में बदल डालने की एकांगी नीतियों से बच सकें।

आशय स्पष्ट है—विज्ञान ने हमें बाँध बनाने की तकनीक तो उपलब्ध करा दी है, पर उसके दूरगामी परिणामों का आकलन करके जब हम सही स्थानों का चुनाव करेंगे, तभी वह हमारा वैज्ञानिकतापूर्ण दृष्टिकोण होगा।

इस प्रकार हमारी सरकारी नीतियाँ, हमारे दैनन्दिनी कार्य और हमारी वृहत्तम योजनायें, जब **क्या, क्यों और कैसे** की कसौटी पर कसी जाकर अपनाई जायेंगी, तभी वह वैज्ञानिक चिंतन हमारे देश की प्रगति में अपना पूर्ण गुणात्मक योगदान दे सकेगा।

●●

रहस्यों से घिरी अंतरिक्ष की धूल

डॉ० जगदीप सक्सेना

एक हवाई जहाज अट्ठारह हजार मीटर से ज्यादा ऊँचाई पर उड़ रहा था। इसके ऊपर विशाल 'प्लेटें, लगी थी, जिन पर तेल चुपड़ा हुआ था। बता सकते हैं क्यों? ताकि अंतरिक्ष से गिरने वाली धूल इस पर चिपक सके और इसकी जांच-पड़ताल की जा सके। यह अनोखा बंदोबस्त अमेरिका के डॉन ब्राउनली नामक वैज्ञानिक ने किया था इससे जो धूल के कण पकड़ में आये उनका आकार आमतौर पर दस माइक्रोमीटर था। माइक्रोमीटर का मतलब मिलीमीटर का हजारवां हिस्सा। इन धूल कणों में सिलिकेट के साथ और भी कई पदार्थ थे।

कुछ इस तरह के प्रयोगों से और कुछ ठोस वैज्ञानिक तर्कों के सहारे, हमने अंतरिक्ष के धूल कणों के बारे मे काफी कुछ जान लिया है। इनका औसत आकार वह नहीं है जो ब्राउनली के प्रयोगों से पता लगा है। ये आमतौर पर कुछ माइक्रोमीटर से कम आकर के पाये गये हैं। इनकी आकृति गोल नहीं है। ये कुछ लंबे से हैं—अपनी चौड़ाई में कोई तीन गुना लंबे। पर जमीन के धूल कणों की तरह अंतरिक्ष में इनकी तादाद ज्यादा नहीं है। कहीं-कहीं कई सौ घन मीटर जगह में भी केवल एक धूल का कण मौजूद होता है। पर तारों के प्रकाश पर इनका प्रभाव काफी पड़ता है। कारण कि तारों के बीच दूरियाँ बेहद ज्यादा हैं, जिससे प्रकाश के रास्ते में सैकड़ों धूल कण आते हैं। इस कारण तारों का चमकीलापन घट जाता है।

वैज्ञानिकों ने हिसाब-किताब लगाकर बताया है कि अगर कोई तारा हमसे तीन हजार प्रकाश वर्ष दूर हो तो हमें उसकी आधी चमक ही नजर आयेगी। एक प्रकाश वर्ष के मतलब लगभग 95,000,000,000,00 किलोमीटर। इसी तरह हर तीन हजार प्रकाश वर्ष पर चमक आधी होती जाती है। यानी तीस हजार प्रकाश वर्ष से ज्यादा दूरी पर मौजूद तारों से हम तक कभी कोई रोशनी नहीं आएगी। इन्हीं धूल कणों की बदौलत। धूल कणों का यह असर हमें वैसे तो बड़ा नागवार गुजरता है, पर वैज्ञानिकों के लिए है बड़े काम का। क्योंकि वैज्ञानिकों ने इसी के सहारे धूल कणों के कई रहस्य जाने हैं।

तीसरे दशक में ही स्वीडन के खगोल विज्ञानी रॉबर्ट ट्रम्पलर ने बताया था कि धूल कण तारों की चमक को घटाने के अलावा, इसे हल्का लाल रंग भी प्रदान करते हैं। इसी वजह से जब सूरज आसमान में नीचे होता है तो लाल दिखाई देता है। यानी धूल कण कम लंबाई वाली नीली तरंगों को ज्यादा सोखते हैं। इसलिए इनका आकार लाल तरंगों की लंबाई (0.7 माइक्रोमीटर) से कम होना चाहिए। बाद में यही साबित हुआ। इसके लंबेपन का पता भी इनसे गुजरने वाले प्रकाश के कारण ही लगा। वैज्ञानिकों ने देखा कि धूल से होकर आने वाला प्रकाश ध्रुवीकरण (पोलेराइजेशन) प्रदर्शित करता है। गोल कण ऐसा नहीं कर सकते।

अब सवाल आया इनमें मौजूद तत्वों या पदार्थों का। वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में देखा कि सिलिकेट (विभिन्न धातुओं के साथ सिलिकन और ऑक्सीजन के यौगिक) उसी लंबाई की तरंगें सोखते है, जैसी धूल कण। यानी धूल कणों में सिलिकेट जरूर होंगे। इस खोज पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। कारण कि ब्रह्मांड में आक्सीजन और सिलिकन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। साथ ही वैज्ञानिकों ने इनमें कार्बन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन की मौजूदगी का अनुमान भी लगाया। उल्लेखनीय है कि यही तत्व मिलकर जीवन के लिए जरूरी अणु (अमीनो अम्ल आदि) बनाते हैं। कार्बन की मौजूदगी धूल कणों द्वारा पराबैंगनी प्रकाश को सोखने के कारण भी पता लगती है। कार्बन के इन कणों का आकार 0.01 माइक्रोमीटर पाया गया है। पर अंतरिक्ष की धूल में इनकी तादाद बहुत कम देखी गई है।

नीदरलैंड की लीडेन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक मेयो ग्रीनबर्ग ने धूल कणों की रचना जानने के लिए काफी प्रयोग किये हैं। उनके अनुसार धूल कणों पर पीले रंग का चिपचिपा जैविक पदार्थ लिपटा रहता है। साथ ही ऊपर की ओर हल्की सी बर्फ (यानी जमा पानी) लगी रहती है। ऐसा खासतौर पर उन धूल कणों में होता है, जो घने बादल के रूप में रहते हैं। रचना के आधार पर ब्रिटिश खगोल विज्ञानी फ्रेड हॉयल और चंद्र विक्रमसिंह ने अटकल लगाई है कि ये धूल कण और कुछ नहीं वरन् हिमीकृत जीवाणु और विषाणु हैं। इन्हें धरती समेत अनेक ग्रहों पर जीवन का स्रोत माना जाता है। कुछ अन्य वैज्ञानिक भी इस अटकल को सच मानते हैं।

धूल कणों की असलियत जानने के लिए सन् 1986 में दो रूसी और एक न्यरोपीय अंतरिक्ष यानी हैली कॉमेट के शिरोभाग से होकर गुजरे। धूल कणों की जाँच-पड़ताल से तीन तरह के कण सामने आये। कुछ केवल सिलिकेट से बने थे तो कुछ में सिलिकेट के साथ जैविक अणु भी मौजूद थे। तीसरे और सबसे रहस्मय थे वे धूल कण, जो केवल जैविक अणुओं से बने थे। इन्हें वैज्ञानिकों ने 'सी० एच० ओ० एन' कण यानी कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन कण का नाम दिया। पर इनकी रचना के बारे में अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। इसके लिए एक बड़ी योजना बनायी गयी है।

सन् 2000 के आस-पास एक ऐसा अंतरिक्ष यान छोड़ा जाएगा, जो क्षुद्रग्रह (ऐस्टेरायड) और धूमकेतु दोनों से ही उठने वाली धूल का अध्ययन करेगा। यह यान क्षुद्रग्रह से गुजरता हुआ धूमकेतु के साथ हो लेगा और फिर लगातार इसके साथ रहेगा। साथ-साथ इनसे निकलने वाली गैसों और धूल की जाँच-पड़ताल भी होती रहेगी। एक ऐसा यान भी छोड़ा जाएगा, जो धूमकेतु के केन्द्र से धूल का नमूना लेकर जांच करेगा।

सवाल उठता है वैज्ञानिकों को अंतरिक्ष की धूल में इतनी दिलचस्पी क्यों है? कारण कि इसी धूल में हमारे सौर मंडल की उत्पति का रहस्य छिपा है। और संभवत: धरती पर जीवन की उत्पति का भी खगोल विज्ञानी तारों और ग्रहों की उत्पति बेहद बड़े और घने धूल (या गैस) के बादलों में ऐसे बादलों में गैस आपस में क्रिया करके कई अणु बनाती हैं, जैसे हाइड्रोजन, फार्मलिहाइड और इथेनॉल आदि। यह धूल इतनी घनी होती है कि इसके कई छोटे-छोटे पिंड अपने ही गुरुत्वाकर्षण के कारण एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। और इस तरह जन्म लेता है एक तारा इससे चारों ओर मौजूद धूल जगह-जगह संघनित होकर कई ग्रह बना सकती है। कहते हैं हमारे सौर-मंडल में अंतरिक्ष के धूल कणों की मौजूदगी ना के बराबर है।

पर सूरज को घेरे हुए धूल का एक छल्ला या चक्र अभी भी मौजूद है। यह सूरज के काफी पास है, बुध ग्रह से भी पास। इसका पता सन् 1983 में जापानी वैज्ञानिकों ने लगाया था इन धूल कणों का तापमान एक हजार डिग्री सेल्सियस पाया गया है। कुछ कारणों से सूरज इस धूल को हमेशा सौर मंडल से बाहर धकेलने की कोशिश करता रहता है। पर धूल है कि बराबर बनी रहती है। कारण? हमारे सौर मंडल में लगातार अंतरिक्ष की धूल आती रहती है। इसके कई कारण हैं।

अंतरिक्ष में धूल बनाने का काम जल्दी ही बुझने वाले तारे करते हैं। तारों के केन्द्र में लगातार होने वाली कुछ परमाण्विक क्रियाओं के कारण हाइड्रोजन और हीलियम कुछ जटिल तत्व बनाते हैं, जैसे सिलिकन, कार्बन, आक्सीजन आदि। जब तारा बुझने वाला होता तो वह फैलता है। इसका आकार सौ गुना बढ़ जाता। ऐसी अवस्था में गैसों का प्रवाह तारे के केन्द्र में बने तत्वों को तारे की सतह पर ला देता है। यहाँ तापमान तीन हजार डिग्री सेल्सियस से भी कम होता है। नतीजन गैसें ठोस का रूप ले लेती हैं—धूल कक्ष बनते हैं, जो अंत में अंतरिक्ष में विलीन हो जाते हैं।

धूल कण बनाने वाले तारे दो तरह के होते हैं। एक तो वे जिनमें कार्बन ज्यादा होता है, और दूसरे वे जिनमें आक्सीजन की अधिकता होती हैं। 'कार्बन तारे' कार्बन के विभिन्न रूपों के कणों को जन्म देते हैं। जबकि आक्सीजन तारों' की आक्सीजन, सिलिकन और अन्य धातुओं से क्रिया करके सिलिकेट तथा अन्य यौगिक बनाती है। ब्रह्मांड में आक्सीजन तारों, की तादाद 'कार्बन तारों की तुलना में दस गुना ज्यादा है। यही कारण है कि धूल कणों में सिलिकेट सबसे ज्यादा होता है।

क्षुद्रग्रहों के आपस में टकराने और धूमकेतुओं के 'मलबे' से भी काफी तादाद में अंतरिक्ष की धूल बनती है। जब दो क्षुद्रग्रह आपस में टकराते हैं तो इनके बहुत से टुकड़े अंतरिक्ष में इधर-उधर छिटक जाते है और उल्काओं का निर्माण करते हैं। इन्ही की वजह से चमकीला, आग जैसा उल्कापात होता है। धरती तक आते-आते ये पूरी तरह से जल जाते हैं। इसलिए इनकी मदद से अंतरिक्ष की धूल के बारे में ज्यादा नहीं जाना जा सकता। फिर भी कोशिश जारी है।

वैज्ञानिकों की राय में एक खास तरह की उल्का इस काम में मदद कर सकती है। इन्हे 'कार्बोनीफेरस कॉन्ड्राइट' कहते हैं। ये ऐसे क्षुद्रग्रहों का हिस्सा होती हैं, जिनका सतह की रचना में अभी तक कोई खास फर्क नहीं आया है। पर उल्का से मूल धूल के कणों को छांटना एक सिरदर्द भरा काम है। इसके लिए काफी भौतिक और रासायनिक जांच-पड़ताल करनी पड़ती है। पर वैज्ञानिकों कड़ी मेहनत करके ऐसी उल्काओं से मूल धूल के ढेरों कण बरामद किये हैं। इनकी जांच-पड़ताल का काम जारी है।

उम्मीद हैं कि जल्दी ही अंतरिक्ष के धूल कणों की असलियत हमारे सामने होगी। तभी अंतरिक्ष की बहुत सी अनसुलझी गुत्थियाँ भी सुलझेंगी। **(सम्प्रेषण)**

●●

विलुप्त होता कस्तूरी हिरन

डॉ अमरेन्द्र

भारतीय वन्य जीवन संसार में सर्वाधिक संपन्न है। संसार के हजारों पर्यटक प्रतिवर्ष वन्य जीवन का आनन्द लेने और इस बारे में जानकारी लेने हेतु आते हैं। वातावरण में बढ़ती जनसंख्या से मनुष्य जंगलों को काटकर अपने जीविकोपार्जन के लिए या तो खाद्यान्न उगाने, आवास या कल कारखानों को लगाने के लिए वन् भूमि को अधिग्रहीत कर रहा है। इस कारण जिस भारत में कभी 68 प्रतिशत भाग वनों से ढका था वहाँ आजकल 22.9 प्रतिशत ही वन क्षेत्र हैं। प्रतिवर्ष अनेकोनेक जानवर फर, खाल, सींग, दाँत और मांस के लिए मार दिये जाते हैं। वनों की कटाई भी अनेक पशु-पक्षियों के लिए नष्ट होने में सहायक सिद्ध हुई है।

हिरन या मृग कुछ वर्षों पूर्व भारत के हर हिस्से में पाये जाते थे, लेकिन अब ये सुन्दर मनमोहक प्राणी उत्तर प्रदेश, हिमांचल प्रदेश जम्मू एवं काश्मीर एवं सिक्किम के पहाड़ी भागों में पाये जाते हैं।

हिरन को जन्तु-जगत के स्तनधारी वर्ग में आरटीयोडेक्टाइला उपवर्ग के ट्रेगुलीना अतिवर्ग में रखा गया है। ये समसंख्या खुर वाले शाकाहारी स्तनधारी प्राणी होते हैं, जिनकी निम्न प्रजातियाँ हैं—धब्बेदार हिरन, कस्तूरी हिरन बारहसिंगा, पाढ़ा, थामिन हिरन, हरिण, रक्त हिरन, तथा मुजंक हिरन।

अपनी सुन्दरता में प्रसिद्ध थामिन हिरन मणिपुर राज्य में ज्यादातर पाये जाते थे, लेकिन अब ये हिरन उसी राज्य में 'सी' श्रेणी में रख दिये गये है। अर्थात् ये प्राणी विलुप्त अवस्था की ओर बढ़ रहे हैं। बर्मा एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के थामिन हिरन मणिपुर हिरन के समान थे जो अब विलुप्त अवस्था की ओर बढ़ रहे हैं। ये रंग में गहरा भूरा या काले रंग का होते हैं, जो पहाड़ी इलाके तथा घने जंगलों में नहीं रहना चाहते, बल्कि मैदानी क्षेत्रों में रहना प्रसन्द करते हैं, अब ये थामिन हिरन मणिपुर में लोगटक झील में कम संख्या में रह गये हैं।

विभागाध्यक्ष, प्राणी विज्ञान विभाग, सरस्वती महाविद्यालय, हाथरस-204101

हरिण तथा मृजंक हिरन भी भारत के सुरक्षित जंगलों में थोड़ी ही संखया में अपने शत्रुओं से बचते हुये रह रहे हैं। ये भारत, मलेशिया, चीन तथा जापान के घने पहाड़ी जंगली में 6000 फीट को ऊँचाई पर पाये जाते हैं तथा ये दो फीट ऊँचे होते हैं तथा इसका रंग भूरा तथा चेहरे पर काले धागे की रेखा के समान होता है। इसके सींग 3 इंच लम्बे तथा शाखित होते हैं। ये हमेशा जोड़े में रहते हैं और दिनचर होते हैं। ये अपने मूंह से कुत्ते के समान आवाज निकालते हैं इसीलिए इन्हें बार्किंग हिरन या कुत्ते के समान भौंकने वाला हिरन कहते हैं। ये प्रत्येक ऋतु में जनन करते हैं तथा मादा हिरन एक साथ धब्बेदार एक या दो बच्चे उत्पन्न हैं।

हिरन के शत्रु बाघ चीता तथा मांसाहारी वर्ग के स्तनधारी होते हैं और इन सबसे बड़ा शत्रु हैं मनुष्य।

धब्बेदार हिरन या चीत्तल (एक्सीस-एक्सीस) श्रीलंका तथा भारत के मैदानी क्षेत्रों में एवं पहाड़ियों पर 400 फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह असम, पंजाब तथा राजस्थान में नहीं पाया जाता है। ये उन जंगलों पर बहुतायत में मिलते हैं, जहाँ पर पानी तथा घास चरने के लिए प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ये 2.5 से 3 फीट ऊँचे होते हैं। धब्वेदार हिरन का रंग भूरा तथा पीठ पर काली रेखा एवं शरीर पर धब्बे पाये जाते हैं। इसका सिर तथा पूंछ लम्बी होती है। नर हिरन में सींग 34 इंच लम्बे होते हैं, जिससे 3 या 4 शाखाएँ निकली होती हैं। ये सींग हर साल टूट जाते हैं, और उनकी जगह पर नये सींग निकल आते हैं। मादा धब्बेदार हिरन एकसाथ दो बच्चों को जन्म देती है।

हिरनों में सबसे बहुमूल्य प्रजाति कस्तूरी हिरन होती है, जो दिन प्रति दिन दुर्लभ होती जा रही है। इसके पेट में पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण पदार्थ ही इसके विनाश का कारण है। ये केन्द्रीय एशिया, दक्षिण पूर्ण एशिया, तथा हिमालय की ऊँची पहाड़ियों (8000 से 12000 फीट) पर पाये जाते हैं। यह स्लेटी या भूरा रंग का शर्मीला, तथा मायावी हिरन होता है, जिसे मारने के बाद पेट से कस्तूरी निकाली जाती है। कस्तूरी हिरन के अगले पैर बड़े तथा पिछले पैर छोटे होते हैं। इनमें कोई सींग नहीं पाये जाते हैं तथा चेहरे पर कोई ग्रन्थि नहीं पायी जाती है। इसकी पूँछ बिल्कुल छोटी तथा शरीर का पृष्ठ भारी बड़े बालों से ढके होते हैं। नर कस्तूरी हिरन से 3 इंच लम्बा, ऊपरी जबड़े से केनाइन दाँत, नीचे की ओर निकले होते हैं, लड़ने का कार्य करते हैं। नर से पिछले जाँघ पर कापूडल ग्रन्थि पाये जाते हैं, जो पूंछ के अधर भाग पर खुलते हैं और विशेष गंध वाले स्त्राव से मादा हिरन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। कस्तूरी मृग में ही केवल पित्ताशय पाये जाते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार कस्तूरी हिरन एक हिरन हैं जिसके सींग, तथा चेहरे पर ग्रन्थियां नहीं पायी जाती हैं। इसके मांस तथा कस्तूरी की माँग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ज्यादा हैं। इसकी खाल महकती है तथा ये प्रसाधान एवं दवाइयों को प्रयोग में लायी जाती है। इन्हीं सब कारणों से भारत सरकार ने कस्तूरी मृग को 'सी' श्रेणी में रख दिया है।

पहाड़ी कस्तूरी मृग 65 से 87 से० मी० लम्बा, 20 इंच ऊँचा तथा 8 से 15 किलोग्राम भार वाला जन्तु हैं, जिसके बाल गर्मियों में गहरे बादामी रंग तथा जाड़ों में गहरे स्लेटी रंग के हो जाते हैं। यह एक रात्रिचर प्राणी हैं, जो शाकाहारी भोजन के लिए रात्रि में बाहर निकलता है।

प्रौढ़ नर कस्तूरी मृग में, नाभि तथा जनन अंग के बीच, एक गढ्ढे में कस्तूरी पायी जाती है। ये कस्तूरी प्रकृति की देन है, जो मादा मृग को अपने तरफ आकर्षित करने या सुगंध देने के लिए होती है। प्रत्येक नर मृग में,

15 से 20 ग्राम तक कस्तूरी पायी जाती है, जो जनन काल में बहुत ही तेज सुगन्ध देती है। मृग को मारने के पश्चात् शिकारी गढ्ढे से कस्तूरी निकाल लेते हैं औह उसे धूप में सुखा देते हैं। ताजा कस्तूरी भूरे रंग की अर्ध-ठोस तथा तैलीय होती है तथा सूखने के बाद दानेदार पाउडर के समान हो जाता है, जो पानी तथा एल्कोहॉल में घुलनशील होती है। इसकी खासियत उत्तेजक तथा उदेष्टरोधी होती है।

एक कस्तूरी मृग पहाड़ी गाँवो में 3000 से 7000 रुपये तक बिकती है। आजकल कस्तूरी का भाव अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में 80000 रुपये से 10,0000 रुपये तक प्रति किलोग्राम यू० एस० डॉलर है, जिससे कि शिकारी धन के लालच में हिमालय के बर्फीले क्षेत्रों में, ज्यादा से ज्यादा कस्तूरी मृग को, एक साथ मार देते हैं।

किन्तु धीरे-धीरे लोगों में पर्यावरण के प्रति दिलचस्पी बढ़ रही है तथा जन-जागरण के प्रयासों से लोग वन्य जीवन के महत्व को समझने लगे हैं। यह शुभ लक्षण है।

○○
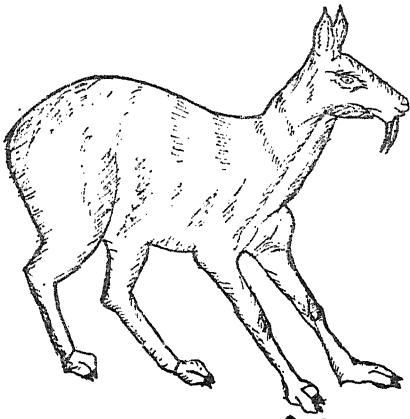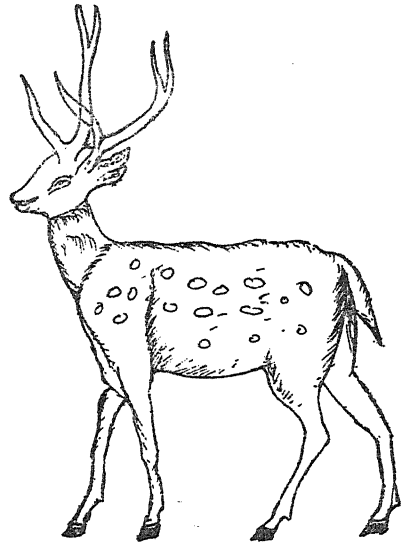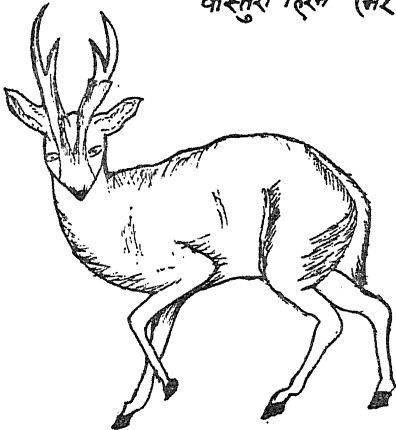
समुद्रीय उत्खनन : खनिजों का विपुल भंडार

सुनील दत्त तिवारी एवं पवन कुमार

समुद्र ने हमेशा से मानव की कल्पना, संस्कृति और भाग्य को प्रभावित किया है। समुद्र धरती के लगभग 71 प्रतिशत भाग को घेरे हुए है, जो लगभग 510 लाख वर्ग किलोमीटर है। यह तो सर्वविदित है कि समुद्रों से बड़ी मात्रा में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। यह व्यवसाय बहुत से देशों के आर्थिक तन्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खाद्य एवं कृषि संगठन (Food and Agricultural Organisation) के अनुसार पूरे विश्व में समुद्र से प्रतिवर्ष 24 मिलियन टन के लगभग मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, जिनमें से आधी मात्र एशियाई क्षेत्र से है।

आज भोजन के अलावा मनुष्य समुद्र से अन्य और लाभ भी प्राप्त करने लगा है। पीने का पानी, दवायें, रसायनों, उर्वरकों और अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मानव ने अब समुद्र पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

यद्यपि समुद्री जल से नमक की प्राप्ति तो बहुत पहले से की जाती रही है, परन्तु रसायनों और खनिजों की प्राप्ति की खोज अभी नयी ही है। सर्वप्रथम एच० एम० एस० चैलेन्जर (H. M. S. Challenger) नामक एक ब्रिटिश जलपोत ने सन् 1873-76 के दौरान समुद्र के गहरे हिस्सों में विद्यमान खनिजों का पता लगाया था। उसके बाद समुद्र के गर्भ में किये खनिजों की प्राप्ति की सम्भावनाओं को ज्ञात करने हेतु अनेक अभियान विभिन्न जलयानों द्वारा चलाये गये, जो विशेषरूप से इसी उद्देश्य के लिए बनाये गये थे। इन्हीं खोजों के चलते समुद्र से पेट्रोलियम जैसे खनिज पदार्थों की प्राप्ति भी सम्भव हो सकी है।

एच० एम० एस० चैलेन्जर द्वारा समुद्र के गहरे हिस्से में धातुओं के एक नये स्रोत की खोज की गई है, जो अनियन्त्रित आकार के पिण्डों के रूप में होते हैं। जान मुरे (John Murray) नामक वैज्ञानिक ने इन पिण्डों को ग्रन्थिका (Nodule) नाम दिया है। इन ग्रन्थिकाओं के एकत्रीकरण से धातुओं और खनिजों से सम्बन्धित हमारी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। ये ग्रन्थिकायें कान्टीनेन्टल शेल्फों के सतह और निचले हिस्से में बहुतायत से पाये जाते हैं। समुद्री किनारों में पानी के अन्दर भारी खनिज, नोबेल धातुएँ और इसी तरह के अवसाद पाये जाते हैं। रासायनिक और जैविक क्रियाओं के फलस्वरूप, पानी की अलग-अलग गहराइयों पर फॉस्फोराइट, ग्लाइकोनाइट (पोटैशियम, आयरन और एल्युमिनियम के हाइड्रेटेड सिलिकेट्स) और अन्य खनिज पाये जाते हैं।

दो अन्य प्रकार के खनिज अवसाद इन कान्टीनेन्टल शेल्फ के अन्दर पाये जाते हैं। सबसे पहले ये खनिज समुद्री वातावरण में ही बने थे, परन्तु अब जमीन पर भी पाये जाते हैं। फॉस्फेट और कुछ लौह अयस्क इसी श्रेणी में आते है। दूसरी श्रेणी में वो खनिज हैं, जो समुद्री वातावरण में तो नहीं बने हैं परन्तु कान्टीनेन्टल शेल्फ में कुछ गहराई पर उपस्थित हैं।

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

शेल्फों से प्राप्त बालू और कंकड़ में मुख्य रूप से क्वार्ट्ज होता है, परन्तु अन्य खनिज, बहुधात्विक चट्टानें भी पायी जाती हैं।

समुद्र की आन्तरिक सतह पर फॉस्फेट ग्रन्थिकाओं, गोलियों (Pellets) और क्ले के आकार में जमा होता है। ये समुद्र में 30 से 400 मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। फॉस्फेटिक खनिजों में मुख्य रूप से फॉस्फोराइट हैं, जिन्हें क्लोरएपेटाइट या फ्रेंकोलाइट कहते हैं। इनमें साधारणतया 15-20 प्रतिशत तक फॉस्फोरस, P_2O_5 के रूप में होता है तथा अच्छी किस्मों में इसकी मात्रा 30 प्रतिशत तक हो सकती है। फॉस्फेट की इन ग्रन्थिकाओं का व्यास कई सेमी० तक हो सकता है तथा इनकी बाहरी सतह अनियमित आकार की होती है। शार्क मछलियों के दाँत या अन्य जीवाश्मीय अवशेष इन ग्रन्थिकाओं के केन्द्रक के रूप में होते हैं।

ये फॉस्फेट ग्रन्थिकायें सबसे पहले चैलेन्जर अभियान (1873-76) में एक वैज्ञानिक द्वारा दक्षिण अफ्रीका के समुद्री क्षेत्र में खोजे गये थे। इसके बाद अन्य जगहों पर भी खोज की गई। अब कई स्थानों जैसे जापान, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तरी समुद्री किनारा तथा उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी समुद्री किनारे और संसार के अन्य जगहों पर भी ये फॉस्फेटिक ग्रन्थिकायें पायी जाती हैं। भारत में ये अंडमान द्वीप समूह के आस-पास तथा केरल के समुद्री किनारों के जल में भी पाये गये हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी की सतह में 36 बिलियन टन फॉस्फेटिक खनिज हैं, जिनमें 85 प्रतिशत समुद्रीय मूल के हैं।

इन ग्रन्थिकाओं की उत्पत्ति कैसे हुई, इस बारे में अभी पूर्ण जानकारी नहीं है फिर भी. कुछ सिद्धान्त माने गये हैं। ज्वालामुखीय क्रियायें, ठण्डे पानी की धारायें और जैविक उत्पाद इन ग्रन्थिकाओं के निर्माण के मुख्य कारक हैं।

इसके अलावा समुद्री उत्खनन के द्वारा न केवल फॉस्फेट ग्रन्थिका बल्कि अन्य खनिज भी पाये जाते हैं जैसे—पेट्रोलियम—जो अनेक अन्य प्रकार के उत्पादनों—पेट्रोल, कैरोसिन, डीजल आदि। इसके अलावा प्राकृतिक गैसें, गन्धक आदि भी पाये गये हैं। इन खनिजों का हमारे लिए बहुत महत्व है। भारत में समुद्री उत्खनन की शुरुआत सन् 1963 में खम्भात की खाड़ी में नर्मदा नदी के मुहाने पर की गयी। इसके अलावा कच्छ की खाड़ी, समुद्रतटीय केरल, मन्नार की खाड़ी, कोरोमण्डल तट आदि क्षेत्रों में की उत्खनन किया गया।

समुद्री उत्खनन से प्राप्त खनिजों में निकिल, कोबाल्ट, मैंगनीज, कॉपर तथा आयरन प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त फेरोमैंगनीज ऑक्साइड और मोनाजाइट जैसे महत्वपूर्ण खनिज भी प्राप्त होते हैं। फेरोमैंगनीज ग्रंथिकाओं (Ferromanganese Nodules) में मुख्यत: मैंगनीज और आयरन होता है साथ ही कॉपर, निकिल तथा कोबाल्ट धातुओ की भी कुछ मात्रा इनमें विद्यमान होती है। यह फेरोमैंगनीज नोड्यूल अधिकांशत: आलू की तरह गोल आकार के होते हैं, जिनका व्यास 0·5 सेमी० से 25 सेमी० तक होता है। इनका औसत आकार 3 सेमी० है। इन ग्रंथिकाओं का रंग काला या कत्थई भूरा (Tan) होता है। काला रंग रंग मैंगनीज डाइऑक्साइड की अधिकता के कारण तथा भूरा रंग फेरिक ऑक्साइड की अधिकता के कारण होता है। कुछ फैरोमैंगनीज ग्रंथिकायें 2 लाख वर्ष तक के पुराने होते हैं। इन ग्रंथिकाओं की औसत वृद्धि दर 5 मिलीमीटर प्रति दस लाख वर्ष है। एक वैज्ञानिक पैटरसन (Pettersson) की 1943 की रिपोर्ट के अनुसार यह वृद्धि दर 1 मिमी० प्रति एक हजार वर्ष हैं।

प्रशान्तीय मैंगनीज ग्रन्थिकाओं (Manganese Nodules) में पायी जाने वाली विद्यमान धातुयें

तत्व	प्रतिशत भार (शुष्क भार के आधार पर)
Mn	24.2
Fe	14
Si	9.9
Al	2 9
Na	2.9
Ca	1.9
Mg	1.7
Ni	0.99
Ti	0.67
Cu	0.53
Co	0.35
Pb	0.09
V	0.054
Mo	0.052
Zn	0.047
Y	0.016

मोनाजाइट में जोकि केरल और तमिलनाडु के समुद्री किनारे से उत्खनित किया जाता है, थोरियम और यूरेनियम जैसे महत्वपूर्ण तत्व पाये जाते हैं। प्रतिवर्ष अपने देश में 7000 टन मोनाजाइट का उत्पादन समुद्री उत्खनन से हो रहा है, जिसमें से 5000 टन तमिलनाडु, 1500 टन उड़ीसा तथा 500 टन केरल द्वारा उत्पादित होता है। भारत में समुद्री उत्खनन से कुछ अन्य पदार्थ जैसे—कोयला, प्राकृतिक तेल एवं गैस भी प्राप्त किये जा रहे हैं। जहाँ तक कोयले का सवाल है वह स्काटलैण्ड (जापान के तकनीकी सहयोग से) के अलावा कोई अन्य देश समुद्री उत्खनन से नहीं प्राप्त कर सका है। जबकि प्राकृतिक तेल एवं गैस विश्व के कई देशों तथा भारत में बाम्बे हाई (175 किमी दक्षिणी पश्चिमी बाम्बे) से 1981 से लगातार उत्पादित किये जा रहे है।

हाल ही में सेन्ट्रल साल्ट एण्ड मैरीन केमिकल्स रिसर्च इंस्टीट्यूट भावनगर ने समुद्री पानी से शोनाइट (Schoenite) उत्पादन की एक विधि विकसित की है। यह शोनाइट पोटैशियम और मैग्नीशियम का मिश्रित लवण है।

उपरोक्त सूचनाओं से स्पष्ट है कि समुद्रीय उत्खनन कार्यक्रमों में विस्तार करके हम खनिजों, तेल तथा प्राकृतिक गैस की आपूर्ति आसानी से कर सकते हैं। अतः आवश्यक है कि हमारी सरकार अपनी नीतियों द्वारा ऐसे कार्यों को बढ़ावा देने की कोशिश करे जिससे हम खनिजों एवं तेल के मामले में आत्मनिर्भर हों, समृद्ध हों।

●●

तनु फिल्म जगत् में एक नई क्रान्ति : हीरे की संरचना वाली तनु फिल्म

नकुल पाराशर

आज के इस इलेक्ट्रॉनिक्स के युग में बड़े इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में उष्मा कुण्डों का विशेष स्थान है। इन उष्मा कुण्डों का आकार कई उपकरणों के लिए बड़ा एवं बनाने की लागत, दोनों स्थान एवं आर्थिक दृष्टि से काफी मँहगा पड़ता है। बड़े-बड़े उष्मा कुण्डों की इस त्रुटि को दूर करने की दृष्टि से तनु फिल्म (परत) उष्मा कुण्डों का विकास हुआ, किन्तु इस दिशा में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इस कारण वैज्ञानिकों ने तनु फिल्म जगत् के लिए वैकल्पिक पदार्थों की खोज की। इस संदर्भ में पिछले दशक में किये गये विभिन्न प्रयोगों से हीरे की संरचना वाली तनु फिल्मों के निर्माण में वैज्ञानिकों को जो सफलता प्राप्त हुई है, उसने तनु फिल्म जगत् में एक नई क्रान्ति पैदा की है।

हीरा वास्तव में कार्बन के दो प्रमुख बस्रों में से एक है। तनु फिल्मों के जगत् में हीरे सदृश संरचना वाली तनु फिल्मों की अपनी विशिष्ट उपयोगिता है। विशेष कठोरता, रासायनिक संतृप्तता, ऊँची वैद्युत् प्रतिरोधता, श्रेष्ठ प्रकाशीय पारदर्शिता तथा उच्च तापीय चालकता आदि प्रौद्योगिकीय महत्व के गुणों के कारण इन फिल्मों ने पिछले दशक के पूर्वार्द्ध से वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। विश्व की मानी हुई डेढ़ दर्जन से अधिक तनु फिल्म प्रयोगशालाएँ हीरे सदृश संरचना वाली तनु फिल्में तैयार करने की दिशा में अनुसंधान कार्य में जुटी हुई हैं। वैज्ञानिकों के इस आकर्षण का मुख्य कारण प्रतिरक्षा, औद्योगिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में इस प्रकार की तनु फिल्मों के उपयोग की नई विशिष्ट आवश्यकताओं का उत्पन्न होना है। विशेषकर सैन्य क्षेत्र के अनुप्रयोगों में थल, जल तथा वायु तीनों में टिकाऊ, कठोर एवं मजबूत तनु परतों से आरोपित सतहों की आवश्यकता होती है, जो हर प्रकार के वातावरण में अपनी कार्यक्षमता बनाये रखें। फ्रांस की शोध रिपोर्टों के आधार पर यह पुष्ट हो जाता है कि जैसे ढाई सौ मीटर प्रति सेकेण्ड की गति से उड़ रहे वायुयान के सामने वाली चालक खिड़की पर लगे अवरक्त इमेजर पर पड़ी, एक मि० मी० व्यास की एक जल की बूँद से समस्त इमेजर चकनाचूर हो गया। ऐसी अवस्था में सतह को धूल मिट्टी से हुए घर्षण के बाद भी चिकना रख उसकी प्रकाशीय क्षमता बनाये रखने में हीरे सदृश तनु फिल्में बहुपयोगी सिद्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त सौर सेलों की कार्यक्षमता को भी बढ़ाने में उक्त फिल्मों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सिलिकॉन एवं गैलियम आर्सेनाइड के सौर सेलों पर इन फिल्मों के आरोपण से न केवल यांत्रिक सुरक्षा की पूर्ति होती है, वरन् अधिक प्रकाश के अवशोषण एवं उसके फलस्वरूप हो रहे उष्मा चालन में वृद्धि होती है। इसके व्यास सौर सेलो के निर्माण में लगने वाली लागत में कमी तथा कार्य क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि उल्लेखनीय है।

हड्डी एवं जोड़ों के प्रत्यारोपण में भी इन फिल्मों का धीरे-धीरे पदार्पण हो रहा है।

चुम्बकीय ध्वनि रिकार्डिंग में इनका प्रयोग आरम्भ हो चुका है, किन्तु इतने विशाल अनुप्रयोगात्मक परिसर का विस्तार अभी किया जाना बाकी है।

भौतिकी विभाग, दिल्ली इंजीनियरिंग कॉलेज, दिल्ली-6

हीरे सदृश संरचना वाली तनु फिल्मों की संरचनात्मक विशिष्टतायें

तनु फिल्मों के गुणात्मक अध्ययन के समय पारदर्शिता को पहला स्थान दिया जाता रहा है। विशुद्ध हीरा सबसे अधिक पारदर्शी पदार्थ है। इसकी पारदर्शिता की सीमा सौ नैनोमीटर से एक हज़ार माइक्रोमीटर के तरंगदैर्घ्य तक की है। एक उत्तम हीरे की संरचना वाली तनु फिल्म के लिए जिसका अवशोषण एक प्रतिशत से भी कम है, उसके लिए यह तरंगदैर्घ्य की सीमा दो माइक्रोमीटर से पन्द्रह माइक्रोमीटर रिकार्ड की गई है।

दृश्य वर्णक्रम में यह फिल्में भूरी दिखाई देती है; जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रकाश का अवशोषण नीले रंग की तरफ बढ़ने पर होता है।

वर्णक्रम के विभिन्न अवयवों में उक्त फिल्म का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि छः सौ नैनोमीटर के तरंगदैर्घ्य के पास रिकार्ड किये गये आरेख में विसंगति पाई गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन फिल्मों की संरचना क्रमणिभ है और हीरे के साथ अन्य कार्बनिक वस्त्रों का फिल्मों में उपस्थित होना दर्शाता है।

हीरे की जटिल संरचना के कारण तनु फिल्म की आन्तरिक संरचना कार्बन की भाँति होती है, जिससे संरचनात्मक अध्ययन और भी जटिल हो जाता हैं। उक्त फिल्मों की पारदर्शिता के कारणों का संरचना की दृष्टि से समझना कठिन तो लगता है, परन्तु इससे कुल फिल्म की आन्तरिक स्थिति जैसे बन्धों की संख्या तथा प्रकृति दोनों का खुला सा ब्यौरा प्राप्त हो जाता है। आयन की सही ऊर्जा तरंग हेतु आवश्यक तापमान तथा ऊर्जा का होना एवं फिल्म रोपण के दौरान हाइड्रोजन की सही मात्रा में रासायनिक वाष्प का पाया जाना फिल्म की संरचना की सरल विवेचना के लिये प्रमुख एवं आवश्यक कारक है।

इसके अतिरिक्त रोपण पद्धति के द्वारा अशुद्धि घनत्व भी मापा जा सकता है। इस मापन से अन्य गैसों तथा अन्य अशुद्धियों के बारे में भी पता चलता है।

हीरे सदृश तनु फिल्म के अपवर्तनांक का परिसर 1.8 से 2.3 तक रिकार्ड किया गया है जो कि विशुद्ध हीरे के अपवर्तनांक जो कि 2.4 के काफी करीब है। इस अपवर्तनांक परिसर को हीरे के अपवर्तनांक तक ठीक केन्द्रित करने प्रयत्न किये जा रहे हैं। उक्त फिल्मों की उच्च प्रकाशीय उपयोगिता की नई जानकारी जरमेनियम तथा सिलिकन की सतहों पर आरोपित करने पर ज्ञात हुई है। इन उच्च अपवर्तनांकों वाले पदार्थों से गुजरने वाला प्रकाश करीब-करीब पूर्ण परावर्तित होता है। प्रकाश के अभियांत्रिक अनुप्रयोगों में अवरक्त दर्पणों व इमेजर्स पर धूल और मिट्टी से होने वाले घर्षण के कारण सतहों की उच्च कोटि पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए विस्तृत तरंग-दैर्घ्य परिसर के प्रयोग में लाये जा रहे साधारण अपरावर्तनीय तनु फिल्म से आरोपित जरमेनियम की कार्य क्षमता काफी घट जाती हैं तथा धूल-मिट्टी वाले वातावरण बहुत कम प्रभावी होती है। सतत शोध प्रयत्नो से यह पाया गया है कि हीरे सदृश तनु फिल्म से उक्त अवरक्त इमेजर साधारण तनु फिल्म से आरोपित इमेजर की तुलना में दस गुना अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। इसलिये अब रक्षा उपकरणों में हीरे सदृश तनु फिल्मों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाने लगा है।

अवरक्त वर्णक्रम में उच्च पारदर्शिता के साथ अन्य ऑक्साइडों की अपेक्षा हीरे की संरचना वाली तनु फिल्में अधिक कठोर तथा कम घर्षणांक की होती हैं। प्रकाशीय तथा यांत्रिक इन दोनों वर्गों के अनुप्रयोगों में उच्च घर्षण अवरोधक क्षमता पहली आवश्यकता होती है।

उच्च तापीय चालकता एवं उच्च वैद्युत प्रतिरोधकता इन तनु फिल्मों की अन्य विशिष्टतायें हैं। इसी कारण से इन फिल्मों का अनुप्रयोगात्मक क्षेत्र इलेक्ट्रॉनिक्स तक फैल गया है। इनका प्रयोग उच्च शक्ति वाले अर्ध-चालकों में विसंवाहक परत के रूप में होता है। नासा नामक विश्वविख्यात अमेरिकी शोध संस्थान में किये गये अनुसंधानों से बड़े-बड़े उष्मा कुण्डों का स्थान अब यह तनु परतें ले रही हैं।

इन फिल्मों की चिकनाई के अध्ययन से पाया गया है कि 633 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य वाली विक्षेपित प्रकाश की किरण को जब 0.3 माइक्रोमीटर मोटी फिल्म पर डाला गया, तो उक्त फिल्म की चिकनाई पर कोई प्रभाव नहीं पडा। स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से 35000× से भी अधिक बारीकियों के अध्ययन के उपरान्त भी इन फिल्मों की सतह चिकनी ही पाई गई।

हीरे की तनु फिल्मों के निर्माण की तकनीकें

हीरे की तनु फिल्मों के निर्माण हेतु किये गये शोध कार्य से अब तक बारह से अधिक तकनीकें विकसित हो गई हैं। वर्तमान में जिन रोपण प्रक्रियाओं को प्रयोग में लिया जा रहा है, उनमें आयन अभिहनन, आयन अभ्र की सहायता से रासायनिक वाष्प रोपण, रेडियो आवृत्ति में विक्षेपित आयन पद्धति प्रमुख हैं। वास्तव में इन विधियों तथा अन्य सभी विधियों में उत्तेजित आयनों का रोपण किये जाने वाली सतह पर विस्फोटाभर्षण किया जाता है जिससे कुछ समय बाद एक तनु फिल्म सतह पर आरोपित हो जाती है। इन रोपण प्रक्रियाओं में रोपण दर एक दो अंगस्ट्रॉम प्रति सेकण्ड रिकार्ड की गई है।

यह दर आज की तनु फिल्म प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी कम है। इसके अतिरिक्त प्रचलित रोपण तकनीकों में कुछ न कुछ अवांछित अशुद्धियों के कारण त्रुटियाँ प्रकाश में आई हैं। इन त्रुटियों में अनावश्यक मात्रा में हाइड्रोजन हो सकती है, जो विशेषकर मीथेन द्वारा इस फिल्म के निर्माण में शेष रहती है और अवांछित यौगिक बना कर उद्देश्य में बाधा डाल सकती है। उदाहरण के लिए हीरे के स्थान पर ग्रैफाइट आदि के घटक सामने आ सकते हैं। इन अवांछित यौगिकों के कारण पैदा हो रही अशुद्धियों के निराकरण हेतु लगातार प्रयोग किये जा रहे हैं और इस दिशा में अब तक आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है।

प्रकाशीय कोशिकाओं को जोड़ने के लिये विकसित निर्वात में सील बन्द करने की समस्या के निराकरण में आयन अभ्र का प्रयोग किया जाता है। असतलीय रैखिक क्षेत्रों पर आयन कणों के बराबर पड़ने से यह निर्वात में सील बन्द करने का कार्य और सुगम हो जाता है। इन कार्बनिक फिल्मों के इन कोशिकाओं पर रोपण से जहाँ इस रासायनिक संतृप्ता का दोहरा लाभ प्राप्त होता है वहीं एक समान एवं अधिक पकड़ के कारण इसका अनुप्रयोगात्मक क्षेत्र और भी व्यापक हो जाता है।

OO

नींद का विज्ञान

राजीव गुप्ता

कुछ लोग जल्दी सोओ, जल्दी जागो में विश्वास करते हैं, तो कुछ देर से सोने और देर से जागने में। खैर ये तो आदत की बात है। पर असल बात यह है कि नींद पूरी होनी चाहिए। दिन भर शरीर के साथ आपने जो भी ज्यादती की है, उससे निपटने और अगले दिन की भागम भाग के लिए चुस्त बने रहने के लिए गहरी ही नहीं, हल्की नींद भी जरूरी है। नींद के बारे में आँखें खोलने वाले तथ्य प्रस्तुत हैं, इस ललित विज्ञान सम्बन्धी रचना में।

वर्तमान 'गिनेस बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में शायद आपने कैलिफोर्निया, अमेरिका के **राबर्ट मैकडोनाल्ड** का नाम पढ़ा होगा, जिसने 18 दिन 21 घंटे और 40 मिनट तक लगातार जागते रहने का विश्व रिकार्ड कायम कियाँ है। सुनने में तो यह आश्चर्यजनक लगता है, परन्तु अक्सर लोग यह बात नहीं जानते कि हम न केवल आँखें खुली रखकर भी नींद ले सकते हैं, बल्कि हमें इस बात का पता तक नहीं चलता।

कई लोगों को आपने यह भी कहते सुना होगा कि "भई, मैं सारी रात सो नहीं पाया। बस, करवटें ही बदलता रहा।" यदि आप इन सज्जन की नींद की गहराई में जायेंगे तो पायेंगे कि वे रात में आधे घंटे से ज्यादा नहीं जागे थे। अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि जब आप रात को गलती से जाग जाते हैं, तो समय बहुत ही धीरे-धीरे गुजरता प्रतीत होता है। इसी कारण हमें लगता है कि हम सारी रात जागते रहे।

आखिर, आदमी सोता ही क्यों है? उसके लिए कितने घंटे सोना जरूरी है? अगर न सोये तो क्या होगा? और नींद का मानव-स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है? कुल मिलाकर यदि नींद का विज्ञान बहुत रहस्यमय है, जिसे सुलझाने की कोशिश में वैज्ञानिक समाज काफी समय से जुटा हुआ है।

नवजात शिशु 16 से 24 घंटे तक सोता रहता है। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं, उनकी नींद की आवश्यकता कम होती चली जाती है। अमेरिका शोधकर्ताओं के अनुसार, 16 वर्षीय किशोर करीब 10 घंटे और विश्वविद्यालय के छात्र औसत 8 घंटे की नींद लेते हैं। कुछ विद्यार्थी तो अपनी पढ़ाई की आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा सोते हैं।

अधेड़ होते-होते नींद की खुराक भी कम होती चली जाती है, यानी कि 45 से 60 साल के लोग लगभग 6 घंटे ही सो पाते हैं। कई बुजुर्गों को तो 4 घंटे से ज्यादा नींद ही नहीं आती।

दरअसल, होता यह है कि हम लोग दो प्रकार की नींद लेते हैं। एक होती है हल्की और दूसरी गहरी

नींद, जिसमें आदमी खर्राटे लेता हुआ सोता है। आदमी का मस्तिष्क ही कुछ ऐसा बना है, जो नींद में भी जागता है, चाहे वह अर्ध-चेतन अवस्था में रहे या आरम्भिक रूप से चेतन। वैज्ञानिकों ने सोते हुए व्यक्तियों के मस्तिष्क की विद्युत् गतिविधियों के ग्राफ (ई० ई० जी० या इलेक्ट्रोएन्सेफैलोग्राफ) द्वारा निद्रा की विभिन्न अवस्थाओं का पता लगाया है।

नींद पर की गई खोजों से पता चला है कि हम 5 अवस्थाओं वाली नींद लेते हैं, जिसमें 4 गहरी और एक हल्की नींद होती है। हल्की नींद में बन्द पलकों के नीचे भी हमारी पुतलियां हरकत करती रहती हैं, जबकि गहरी नींद के दौरान पुतलियां नहीं हिलती-डुलती।

जैसे-जैसे नींद गहरी होती जाती है, मस्तिष्क की तरंगें धीमी और निरन्तर एक-सी गति के लिए बहती रहती हैं, और सोने वाला आदमी चुपचाप लेटकर हौले-हौले और लगातार सांस लेने लगता है। इसी अवस्था में खर्राटों का जन्म होता है। इस प्रकार एक के बाद दूसरी फिर तीसरी और अन्त में चौथी अवस्था तक गहरी नींद का साम्राज्य कायम रहता है। चौथी या सबसे गहरी निद्रावस्था में दिमाग की विद्युत्-तरंगें न्यूनतम हरकत करती हैं। चौथी, यानी कि सबसे गहरी नींद के बाद यह चक्र उल्टा चलने लगता है और प्रथम अवस्था पर लौट जाने के बाद सोया हुआ व्यक्ति पांचवी अवस्था में पहुँच जाता है। इस अवस्था में हम मात्र 5 से 15 मिनट की हल्की नींद लेते हैं।

यह निद्रा-चक्र 4-5 बार दोहराया जाता है, जिसमें गहरी नींद धीरे-धीरे घटती जाती है और हल्की नींद का समय बढ़ता रहता है। एक आदमी अपनी 8 घंटे की कुल नींद में 2 घंटे की हल्की और 6 घंटे की गहरी नींद ले लेता है।

नींद की सभी गुत्थियां सुलझाने में तो बड़ा समय लगेगा। फिलहाल, ये देखें कि हमें सपने क्यूँ आते हैं। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि हमारे दिमाग को हर रात सपनों का एक न्यूनतम राशन चाहिए और यह भी कि हमारे स्वास्थ्य के लिए गहरी नींद की कम और हल्की नींद की बेहद जरूरत है। उदाहरण के लिए एक प्रयोग में कुछ लोगों को आधी रात तक "हल्की" नींद से वंचित रखा, जिससे वे बाकी बची रात में खोई नींद का अभाव पूरा करने लगे। देखा गया कि कई ऐसे लोग जो जागते में ख्वाब या सोते में सपने भी नही देखते थे, वे भी "हल्की" नींद के अभाव में दिन में भी सपने देखने लगे।

निष्कर्ष यह निकला कि हल्की नींद की खुराक लेने से ही हम पागल होने से बचे रहते हैं। एक अन्य प्रयोग के दौरान यह भी देखा गया है कि पूरी नींद बीमारियों से लड़ने की शरीर की प्रतिरोधक-क्षमता बरकरार रहती है। ठीक तरह न सो पाने से हमारा स्नायु-तंत्र भलीभांति कार्य नहीं करता और सपनों की प्रक्रिया इसे सुचारू रूप से कायम रखने और प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मददगार साबित हुई है।

यह तो समझ में आया कि हल्की नींद और उस दौरान आने वाले सपने मानव.स्वास्थ्य के लिए हितकारी हैं, परन्तु हल्की नींद तो कुल नींद का मात्र चौथाई भाग है। इंसान को बाकी तीन-चौथाई समय में इतनी गहरी नींद लेने की क्या आवश्यकता है? आपको मालूम होगा कि ब्रिटेन की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री **श्रीमती मार्गेट थ्रैचर** केवल 4 घंटे ही सोती रही हैं और तिस पर भी तरोताजा महसूस करती हैं। तो साहब, यह बताइये कि दुनिया भर के बाकी लोग अपनी एक-तिहाई जिंदगी बिस्तरे पर खर्राटे भरते हुए क्यों बर्बाद कर रहे हैं?

(इस्वा फीचर)

● ●

मुश्किल है बचना मक्खी से

प्रदीप कुमार

आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि हत्याओं के हजारों मामलों में मक्खियाँ अदालत और पुलिस की मदद कर चुकी हैं। होता यह है कि मक्खियाँ लाश की ओर आकर्षित होती हैं। अगर लाश पर घाव हैं तो वहीं डेरा जमाकर खाती-पीती हैं और अंडे भी देती हैं। अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग किस्म की मक्खियाँ होती हैं। इसलिये अगर एक जगह की लाश किसी दूसरी जगह पहुँच जाये तो भी लार्वा बता देते हैं कि लाश कहां की है और लार्वा की आयु या अवस्था से लाश के पुरानेपन का अंदाज लगाया जा सकता है। कीट विशेषज्ञों का मानना है कि सामान्य मक्खियों और लाश पर दिये गये अंडों से पैदा मक्खियों के बीच भी अन्तर होता है। उन्हें पहचान कर भी सुराग लगाया जा सकता है।

यह करामाती मक्खी तब से धरती पर है, जब हत्यायें नहीं होती थीं। आदमी ही नहीं था तो हत्यायें होती कहा से। शुरुआत में मक्खी के दो जोड़ी पंख होते थे। करोड़ों साल के विकास के दौरान मक्खी के पिछले एक जोड़ी पंख घायब हो गये इनकी जगह ली दो छोटे मुगदर जैसे अंगों ने। उड़ान के दौरान ये 'पिस्टन' जैसा काम करते है। मक्खी के अगले एक जोड़ी पंख और ये 'पिस्टन' एक ही लय में फड़फड़ाते हैं। पर 'पिस्टनों' की दिशा विपरीत होती है। इससे मक्खी की उड़ान ज्यादा कुशल और टिकाऊ बन जाती है।

मक्खी की उड़ान को कुशल बनाने में इसके शरीर के बाहरी ढांचे का भारी योगदान है। काइटिन और प्रोटीन से बना यह ढांचा बेहद लोचदार होता है। अगर एक बार मक्खी ने पंख फड़फड़ा दिये तो चार बार यह अपने आप ऊपर-नीचे होता रहता है। यानी मक्खी पेशियों को केवल हर पांचवी फड़फड़ाहट के लिए काम करना पड़ता है। यही वजह है कि मक्खी एक सेकंड में दो सौ बार पंख फड़फड़ा लेती है। बेहद कुशल कही जाने वाली चिड़िया 'हमिंग बर्ड' भी इसकी तुलना में केवल एक-तिहाई बार ही पंख फड़फड़ा पाती है। इसके बावजूद मक्खी की उड़ान को तेज उड़ान नहीं कहा जा सकता। कारण यह एक घंटे में ज्यादा से ज्यादा आठ किलोमीटर का फासला तय कर पाती है।

मक्खी उड़ने में सुस्त भले ही हो पर फुर्तीलेपन में इसका कोई सानी नहीं। खासतौर में मुसीबत के वक्त। अगर हम इसे पकड़ना चाहें तो यह दुगनी रफ्तार से भागती है। इसकी सहज क्रियायें (रिफ्लेक्स एक्शनस) हमसे कई गुना तेज है। हम हाथ उठायेंगे भी नहीं कि यह भाग खड़ी होगी। कभी अद्‌भुत कलाबाजी खाकर तो कभी चक्करदार उड़ान भर के। इसकी कलाबाजियां किसी भी कुशल 'एक्रोबेट' को चमत्कृत कर सकती है। यह कई बार कुदरती नियमों को भी ताक में रख देती है।

द्वारा डी-720, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

मक्खी उड़ते-उड़ते कमरे की छत (सीलिंग) पर बैठ जाती है। ऐसा लगता है जैसे यह उल्टी लटकी हो। ऐसा करने के लिये मक्खी अपने अगले पैर आगे की ओर सीधे ऊपर कर लेती है और फिर छत पर समकोण बनाती हुई उतरती है। इसके पैरों में सतह से चिपकने वाले 'पैड' लगे होते हैं। इनके सहारे टिकी मक्खी धीरे से अपना पूरा शरीर ऊपर खींच लेती है और फिर इसी दशा में (यानी उल्टी अवस्था में) आराम से मटरगश्ती करती है।

इतनी कुशल उड़ान और करतबों के लिये उतने ही कुशल नियन्त्रण अंगों का होना भी जरूरी है। हवा के बहाव की दिशा को दिमाग में दर्ज करने के लिये कुदरत ने मक्खी के सिर पर दो 'एन्टीना' लगाये हैं। जैसे ही हवा के बहाव की दिशा बदलती हैं, मक्खी सचेत हो जाती है और अपनी उड़ान में उपयुक्त बदलाव लाती है। आपको जानकर ताज्जुब होगा कि मक्खी के 'एन्टीना' सूंघने का काम भी करते हैं। मक्खी इन्हीं की मदद से अपने भोजन की ओर उड़ती है। कहते हैं मक्खी के सिर पर मौजूद तीन छोटी-छोटी आँखें भी उड़ान में मदद करती हैं। इन्हें 'ऑसिलाई' कहते हैं। देखने के लिये दो बड़ी आंखों का इस्तेमाल किया जाता है। इतनी बड़ी कि सिर पर आँख ही आँख दिखाई देती है।

मक्खी की इन विशाल आंखों को संयुक्त आंख (कंपाउंड आई) कहा जाता है। कारण कि हर आंख कोई चार हजार लेंसों से मिलकर बनती है और हर लेंस एक अलग दिशा में 'फोकस' करता है। इस तरह मक्खी के दिमाग में अपने आस-पास का पूरा चित्र उभरता है। इन्हीं हजारों लेंसों की वजह से मक्खी का दिमाग बड़ी तेजी से दृश्यों को दर्ज करता है। यह एक सेकंड में दो सौ से ज्यादा दृश्य देख सकती है। जबकि हमारा दिमाग एक सेकंड में केवल **24** दृश्य दर्ज कर सकता है।

विशाल आंखों की वजह से मक्खी को आस-पास का दृश्य तो पूरा दिखाई देता है, पर इनकी मदद से यह अपना भोजन नहीं ढूंढ पाती। भोजन ढूंढने के लिये मक्खी को सूंघने वाले 'एंटीना' पर भरोसा करना पड़ता है। रात भर कोने में दुबके रहने के बाद सुबह मक्खी को तेज भूख लगती है। सबसे पहले यह अपने को साफ करती है। फिर हवा में भोजन की महक सूंघने के लिए उड़ पड़ती है। जैसे ही महक मिलती है यह उस ओर उड़ लेती है। ध्यान रहे यह महक हमारे लिये तेज बदबू हो सकती है। भोजन के आस-पास पहुँचने पर यह उतर लेती है और तेज-तेज चलने लगती है। भोजन को चखने का काम मक्खी के पैर करते हैं। इसके पैरों की नोक पर 'स्वाद कलिकाएं' मौजूद होती हैं। ठीक वैसे ही जैसे हमारी जीभ होती है। इससे मक्खी को पता लगता है कि भोजन नमकीन है या खट्टा। कड़वा है या मीठा। चिपचिपा है या द्रव या फिर ठोस।

एक बार भोजन की पहचान हो जाने पर बाकी का काम काफी आसान है। मक्खी के 'एंटीना के नीचे से एक 'ट्यूब' जैसी संरचना बाहर निकलती है। इसे 'रोस्ट्रम' कहते हैं। मक्खी इसी से अपना भोजन चूसती है। मादा मक्खी एक बार में सौ से ज्यादा अंडे देती है। अंडे देने के लिये इसे गंदी जगह तलाशनी पड़ती है, जैसे पशुओं या मानव का मल, सड़े हुए खाद्य पदार्थ वगैरह। अंडों से एक दिन से भी कम समय में 'मैगट' या 'लावा' बाहर आ जाते हैं। एक जोड़ा मक्खी कितनी संतान पैदा कर सकती है? वैज्ञानिकों ने इस कठिन सवाल का हल खोजा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्ल वान फिश के अनुसार चार पीढ़ियों की तादाद सवा करोड़ से ज्यादा होगी। पर मक्खियों की इतनी तादाद भी हमारे लिये कम सिर दर्द नहीं।

मक्खी का गंदी जगहों पर रहना और गंदी चीजों को खाना ही हमारे लिये खासी समस्या बन गया है। मक्खी के अपने शरीर में कोई रोग पैदा करने वाला कीटाणु या जर्म नहीं पनपता। पर गंदगी से ऐसे ढेरों जर्म पनपते है। जब मक्खी मजे से गँदगी का रसास्वादन कर रही होती है तो ये जर्म उसके पैरों से चिपक जाते हैं। फिर जब यही मक्खी हमारे खाद्य पदार्थों पर बैठती है तो ये जर्म वहाँ छूट जाते हैं। इस तरह ये हमारे शरीर में पहुँचकर कई रोग पैदा करते हैं। पेचिश डायरिया समेत पेट के कई रोगों के जर्म मक्खी के जरिये ही हम तक पहुँचते हैं। माना जाता है हैजा और तपेदिक के जर्म भी मक्खी ही फैलाती हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान डीडीटी की खोज होने पर लगा कि अब मक्खियों का सफाया हो जायेगा। 1945-47 के दौरान लगभग पूरी दुनिया ने करोड़ो टन डीडीटी इस्तेमाल किया। पर 1947 में ही दुनिया के कुछ हिस्सों से एक चौंकाने वाली खबर आई—अब मक्खियां डीडीटी से नहीं मरतीं। 1948 में दुनिया के हर कोने से यही खबर थी। वैज्ञानिकों ने बताया कि मक्खियों ने डीडीटी के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर ली है। एक बार फिर कई नये पुराने कीटनाशकों पर जोर आजमाईश शुरू हो गई। सालों बाद वैज्ञानिकों ने फैसला सुनाया कि मक्खी पर विजय पाना लगभग असंभव है। यह हर रसायन के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर लेगी। यह कड़वा सच आज भी अपनी जगह बरकरार है।

हाँ, इतना जरूर है कि घरों के अन्दर खाद्य पदार्थों को मक्खियों के हमले से बचाना मुमकिन है। इसके लिए खिड़कियों-दरवाजों पर महीन जाली लगाई जा सकती है मक्खियों को चिपका लेने वाले 'फ्लाई पेपर' भी बाजार में मिलते हैं। आजकल कुछ खास किरणें फैलाने वाली ट्यूब लाइट भी बनी है। मक्खियां इन किरणों के घेरे में कदम नहीं रखतीं। भोजनालयों के लिए यह एक आदर्श बंदोबस्त है। (सम्प्रेषण)

●●

अधिक पानी पीकर बुढ़ापा रोकिए

राजेन्द्र प्रसाद

विभिन्न वैज्ञानिकों का मत है कि कुछ विशिष्ट खाद्यों और पोषक तत्वों का नियमित रूप से ही उपभोग करके आप वृद्धावस्था के लवणों को कम ही नहीं कर सकते, बल्कि रोक भी सकते हैं। इसमें जल का अपना एक विशेष महत्व है।

प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने अपने अनुभवों के आधार पर सिद्ध किया था कि मानव शरीर पाँच तत्वों—पृथ्वी, आकाश, वायु, जल एवं अग्नि से मिलकर बना है। जिसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है यथा—'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा'। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने अपने गहन प्रयोगों से सिद्ध किया है कि हमारे शरीर का दो तिहाई भाग जल है। शेष ठोस वस्तु तथा कुछ भाग वायु है।

सभी जानते हैं कि हम जल के बिना जीवित नहीं रह सकते। जल एक अनमोल वस्तु है। यह मानव जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है। जितनी वायु। जो जल हम पीते हैं, वह भोजन के साथ मिलकर पेट में भोजन को घोल देता है और उसे पचाने में सहायता देता है। पिया हुआ जल भोजन के साथ मिलकर रक्त में होकर सारे शरीर में फैल जाता है। हमारे रक्त में पांच भाग में लगभग चार भाग जल का है। वह निरन्तर खर्च होता रहता है। शरीर में खून के साथ रहकर जल का जो भाग दूषित तथा हमारे शरीर के लिए अनुपयोगी हो जाता है, उसका कुछ भाग पसीना बनकर और शेष भाग मूत्र बनकर निकल जाता है। सामान्यतः एक आदमी दिन भर में दस से पन्द्रह लीटर तक पानी विभिन्न रूपों में पी जाता है।

सामान्यतः बीस वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की त्वचा को प्राकृतिक रूप से आर्द्रता प्रदान करने वाली पसीने एवं तेल की अधिकांश ग्रन्थियाँ बन्द हो जाती है। त्वचा का ऊपरी सतह भी पतली हो जाती है। इसलिए त्वचा नमी नहीं बनाये रख पाती। वैसे भी हम मूत्र तथा पसीने के रूप में प्रतिदिन जो जल शरीर से निकल जाने देते हैं, उसकी पूर्ति के लिए यदि हम पर्याप्त पानी नहीं पीते तो शरीर अपनी जल सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए त्वचा की कोशिकाओं सहित सभी कोशिकाओं से जल खींचना शुरू कर देता है।

परिणामस्वरूप हमारी त्वचा और भी शुष्क एवं जीर्ण हो जाती है। इस शुष्कता को यदि कम करना चाहते हैं तो बड़े गिलास से दस से पन्द्रह गिलास नक पानी प्रतिदिन हमें पीना चाहिए, ताकि बुढ़ापा जल्दी न आये।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि जल की रोजमर्रा की खुराक में चाय, काफी एवं शीतल पेयों आदि जैसे पदार्थ को शामिल नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि इन पदार्थों में कैफीन जैसा तत्व मिला होता है। जो मूत्रवर्धक होते हैं। त्वचा से जल के क्षय की दृष्टि से भी ये तत्व मद्य सा ही काम करती है। (सम्प्रेषण)

OO

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए समर्पित भारत जन विज्ञान जत्था-92

देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों चाहे जैविक हों या अजैविक उनके बेहतर उपयोग एवं संवर्धन की दिशा में विगत 4 दशकों से हम नित नवीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के द्वारा निरन्तर सादृश उत्पादन रोजमर्रा की उपयोगी वस्तुओं का औद्योगिक उत्पादन के साथ-साथ स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, ऊर्जा, पर्यावरण तथा आवास के सुलभ उपाय खोजने में दिनों दिन कामयाबी हासिल कर रहे हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे देश में निरक्षरता, स्वच्छ पेयजल, कुपोषण गरीबी व बेरोजगारी आदि समस्यायें अपना मुँह फैलाये हैं। जिनके निराकरण के लिए हर नागरिक को अपनी दैनिक जिन्दगी में विज्ञान को जोड़ना आवश्यक है क्योंकि गरीबी, अशिक्षा व बढ़ती हुई जनसंख्या समाज में व्याप्त असमानता, अन्ध विश्वास व रूढ़वादिता ही जीवन के समग्र विकास में मूल अवरोध बनी हुई है। इन कुरीतियों का पर्दाफाश जन जागृति एवं वैज्ञानिक आधार पर महत्व की जानकारी देकर किया जा सकता है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार) ने राष्ट्रीय स्तर पर भारत जन विज्ञान जत्था-92 के नाम से एक जन आन्दोलन चलाने का प्रण किया है। इस आन्दोलन को मूर्त रूप देने के लिये प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक प्रो० यशपाल की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आयोजन समिति का गठन किया जा चुका है। जिसको मूल उद्देश्य एवं गतिविधियों में शत-प्रतिशत भागीदारी अपनाने हेतु उत्तर प्रदेश में राज्य आयोजन समिति गठित की गई है। जिसमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, उत्तर प्रदेश शासन व उसके आधीन कार्यरत स्वायत्तशासी संस्था विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद्, उ० प्र०, लखनऊ के नेतृत्व तथा उत्प्रेरण में प्रदेश की स्वयं सेवी संगठनों व संस्थाओं के सहयोग से प्रदेश के 13 मण्डलों में जत्था कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु मण्डल संयोजकों का चयन किया जा चुका है। जिनकी निगरानी एवं सेवा समर्पण में सम्बन्धित क्षेत्रीय स्वयं सेवी संगठन व शिक्षण संस्थायें अपनी स्थानीय समस्याओं जैसे स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता, स्वच्छ-पेयजल, जलमल विकास, आवास, बेरोजगारी, सामाजिक असमानता रूढ़वादिता व अंधविश्वास आदि मुद्दों से जुड़ी सूचनाओं का संकलन करने तथा उसके निदान हेतु जनजागरूकता के साथ वैज्ञानिक लोक प्रियता तथा वातावरण स्थापित कर रही हैं। जिनका आधार सरल विज्ञान साहित्य का वितरण, वैज्ञानिक आधार से जुड़े माडलों का प्रदर्शन, जन चेतना, लोक गीत, नृत्य, वाद-विवाद, प्रहसन, चुटकुले, निबन्ध लेखन, छात्र-छात्राओं में ज्ञान विज्ञान प्रतियोगिताओं के माध्यम से विज्ञान के महत्व को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास कर रही है। वर्ष 1987 व 1990 में भी राष्ट्रीय स्तर पर भारत जन जत्था तथा भारत ज्ञान विज्ञान जत्था कार्यक्रम का आयोजन किया जा चुका है। जिसमें अपनाये गये विषयों जैसे स्वास्थ्य, सफाई, साक्षरता, गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता व शान्ति अभियान से राष्ट्र के विकास में काफी गति मिली। इस स्वावलम्बी व वैज्ञानिक जन प्रेरणा व चेतना जुड़ा भारत जन विभाग जत्था 92 का वास्तविक स्वरूप आगामी 2 अक्टूबर 1992 से 7 नवम्बर, 1992 (गाँधी जयन्ती से रमन जयन्ती दिवस) तक सम्पूर्ण भारत में हर राज्यों की भाँति उत्तर प्रदेश में भी प्रादेशिक स्तर पर तीन दिवसीय आयोजित होने वाली कार्यशाला, संगोष्ठी सम्मेलन प्रदर्शनी आदि के आयोजन की सफलता से सिद्ध होगा। जत्था के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली भविष्य की रणनीति तथा उसका मार्ग तय किया जायेगा तथा जिला स्तरीय गठित समितियों द्वारा किये

गये साफ्टवियर का मूल्यांकन किया जायेगा। प्रदेश के 10,000 गाँवों को इस आन्दोलन की सक्रियता में लाया जायेगा। इसके लिए राज्य आयोजन समिति द्वारा व्यापक तैयारियाँ की जा रही हैं।

राष्ट्र के विकास से जुड़ी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों व शोध परिणामों को जनसामान्य खासकर ग्रामीण जनता तक पहुँचाने व लाभ प्राप्त करने में मात्र सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी तब तक पर्याप्त नहीं होगी जब तक समाज का हर व्यक्ति, वर्ग तथा रचनात्मक सोच वाला बुद्धि जीवी अपनी प्रतिभा, साहस व मानवीय दृष्टिकोण का सद्पयोग करने हेतु आगे कदम नहीं बढ़ाता है क्योंकि सहयोग व सहभागिता के बिना समाज में व्याप्त असमानता, रूढ़वादिता तथा अंधविश्वास की परम्परा खत्म नहीं हो सकती है जो अपनी आत्म-निर्भरता, के साथ सुख समृद्धि व दीर्घ जीवन के सिवा स्वप्न को साकार बनाने के साथ-साथ देश के भविष्य को एक नयी दिशा दे सकते हैं।

आह्वान

अपने समाज के नवनिर्माण व कायाकल्प के लिए इस साहसिक विशाल जन आन्दोलन में शामिल होने के लिये समाज में स्वाभिमान व आत्मनिर्भरता के साथ जीने का हक रखने वाला हर नागरिक इस राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिये समर्पित भारत का जन विज्ञान जत्था-92 जैसे विशाल जन आन्दोलन में अपनी रचनात्मक भागीदारी के लिए अमन्त्रित है।

अधिक जानकारी एवं बहुमूल्य सुझाओं के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करें :

निवेदक

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद्, उत्तर प्रदेश,
बी-144, सेक्टर-सी, महानगर,
लखनऊ-226006

अध्यक्ष

राज्य आयोजन समिति, उत्तर प्रदेश
10/524, राम भवन,
विधान सभा मार्ग, हुसैनगंज,
लखनऊ-226001

○○

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम : गाँव के कचरे के नये उपयोग

लेखक : डॉ० शिव गोपाल मिश्र एवं डॉ० अजय सिंह

प्रकाशक : राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्,
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार,
नई दिल्ली एवं नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक
विश्वविद्यालय, नरेन्द्रनगर (कुमारगंज) फैजाबाद

प्रथम संस्करण : 1991

मूल्य : 20 रुपये मात्र

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार नई दिल्ली के पूर्ण समर्थन से ग्रामोपयोगी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्रसार साहित्य परियोजना के अन्तर्गत प्रकाशित यह पुस्तक कृषि सम्बन्धी विभिन्न अपशिष्टों/व्यर्थ पदार्थों के उपयोग से सम्बन्धित रोचक एवं महत्वपूर्ण जानकारी से युक्त है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में गाँव के कचरे के प्रमुख स्रोतों, प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न फसलों से प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाले कचरे की मात्रा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण आँकड़ों का भी समावेश इस अध्याय में किया गया है। कृषि अपशिष्टों के अतिरिक्त पशु आधारित कचरे तथा मानव आधारित सामुदायिक कचरे के प्रकारों का वर्णन भी किया गया है। पुस्तक के दूसरे अध्याय में गाँव के कचरे से विविध प्रकार के उत्पादनों यथा कम्पोस्ट-उत्पादन, एल्कोहॉल-उत्पादन, बायोगैस-उत्पादन कागज-उत्पादन, पौष्टिक-चारा-उत्पादन तथा तेल-उत्पादन का विवरण दिया गया है। पुस्तक में जगह-जगह रेखाचित्रों के माध्यम से विषयवस्तु को सुग्राह्य बना दिया गया है। तीसरे अध्याय में धान के कचरे (पुआल, भूसी) से तैयार होने वाले विभिन्न उत्पादों यथा ईंट, ईंधन, सिलिका, सक्रिय कोयला, तेल, बिस्कुट आदि पदार्थों से सम्बन्धित आश्चर्यजनक एवं रोचक सामग्री दी गयी है। चौथे अध्याय में मक्का के कचरे के उपयोग के विषय में यह बताया गया है कि इसकी गिल्ली से कोयला बनाया जा सकता है। इसकी राख से टमाटर, बैंगन, और भिण्डी के रोग-नियन्त्रण में सफलता मिली है। पशुओं को घरेलू हानिकर कीटों से बचाने हेतु भी मक्के की राख काफी उपयोगी साबित हुई है। रसोई के बर्तनों की सफाई हेतु, मकानों के ईंट और पत्थर बनाने हेतु, मकानों की काई नष्ट करने हेतु तथा कपड़ों की धुलाई एवं धब्बे छुटाने हेतु भी इसकी राख का घोल बनाकर छिड़काव करने से सफलता प्राप्त हुई है। पाँचवें अध्याय में कपासके कचरे के विविध उपयोग—बिनौले की खली और आटा जैसी सामग्री तैयार करने से सम्बन्धित जानकारी

दी गयी है । छठें अध्याय में आम की गुठलियों से वसा, स्टार्च तथा छिलके से पेक्टिन तैयार करने के विषय में बताया गया है । सातवें अध्याय में बताया गया है कि नारियल के तनों, पत्तियों से छप्पर तथा इसकी जटाओं से चटाइयाँ, सोफे, गद्दे आदि तैयार किये जा सकते हैं । आठवें अध्याय में फलों एवं सब्जियों (यथा सेब, अंगूर, अमरूद, नारंगी, नींबू, टमाटर, मटर आदि) के व्यर्थ बीजों के नये उपयोगों से सम्बन्धित जानकारी दी गयी है । नवें अध्याय में हरी वनस्पति आधारित कचरों से प्रोटीन प्राप्त करने तथा कम्पोस्ट तैयार करने की विधियाँ दी गयी हैं । बायोगैस संयन्त्र के विषय में भी इस अध्याय में जानकारी दी गयी है । दसवें अध्याय में नीम के कचरे के विविध उपयोगों तथा इसके औषध गुणों के बारे में बताया गया है । ग्यारहवें अध्याय में अन्य कृषि कचरों के नये उपयोग तथा बारहवें अध्याय में प्राणीजन्य कचरे के प्रमुख उपयोगों के विषय में बताया गया है । कुल मिलाकर 88 पृष्ठों की इस पुस्तक में जो भी जानकारी दी गयी है वह बड़ी सारगर्भित, रोचक एवं सुग्राह्य है । इस पुस्तक में प्रूफ से सम्बन्धित गलतियाँ कुछ अधिक ही हैं, इससे पुस्तक की छवि पर आँच आयी है । फिर भी, पुस्तक अपने आप में अच्छी ही कही जायेगी । लेखकद्वय एवं प्रकाशक सभी साधुवाद के पात्र हैं ।

—डॉ० दिनेश मणि
संयुक्त मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-211002

नदियों में बह रहे जहर का कहर

राजेन्द्र कुमार राय

पिछले दिनों केन्द्रीय जल प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के वैज्ञानिकों ने दिल्ली में यमुना नदी के पानी की जांच की । पाया कि मनुष्य तो क्या अब यमुना का पानी जानवरों के पीने लायक भी नहीं रहा । इसके एक सौ मिलिलीटर पानी यानी एक चाय के कप जितने पानी में दस लाख जीवाणु पाये गये । तरह-तरह के रोग पैदा करने में सक्षम इन जीवाणुओं से समृद्ध इस जल के स्नान तक में उपयोग कर लेने भर से कई तरह के विकट चर्म रोग सकते हैं ।

यमुना ही क्यों देश की सारी नदियों का यही हाल है । सारे देश के पापों को कथित रूप से धोने वाली गंगा वास्तव में तो पापों को ढो रही है । इसके किनारे बसे 1500 उद्योगों ने अपना जहरीला पानी उसमें मिला दिया हैं और यह सिलसिला लगातार जारी है । यमुना के किनारे लगे उद्योग इस नदी में साठ डिग्री सेल्सियस गरम पानी छोड़ने का काम मुस्तैदी से कर रहे हैं । यही हाल देश भर की नदियों का है । इस जहरीले पानी से मछलियाँ मरने लगी हैं । अप्रैल 1984 में लखनऊ के पास गोमती में गन्दगी भर जाने से हजारों मछलियाँ खत्म हो गई । आज मछलियाँ मर रही हैं तो क्या कल हम मरेंगे ?

अपनी चौदह सौ किलोमीटर लम्बी यात्रा में यमुना शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में मानवीय सभ्यता के विकास की देन के रूप में ग्यारह हजार क्विन्टल कचरा लेकर संगम (इलाहाबाद) पहुंचती है । इसमें प्रतिदिन 2461 क्विन्टल कचरा राजधानी दिल्ली में ही गिराया जाता है । जबकि दिल्ली से पहले के पूरे 450 किलोमीटर के क्षेत्र में 3069 क्विन्टल कचरा गिराया जाता है । दिल्ली में तो यमुना गटर का रूप ले चुकी है । वजीराबाद बाँध और जैतपुर के बीच पच्चीस किलोमीटर के हिस्से में प्रतिदिन 21 करोड़ गैलन गन्दगी बहा दी जाती है । दिल्ली में रोजाना मल-जल सहित 35 करोड़ गैलन गन्दगी एकत्र होती है, जिसमें से 21 करोड़ गैलन पन्द्रह बड़े नालों के जरिये यमुना में डाल दी जाती है । केवल चौदह करोड़ गैलन गन्दा पानी ही जल शोधन संयन्त्रों के द्वारा साफ कर खेती के इस्तेमाल में लाया जाता है ।

दक्षिण की प्रसिद्ध नदी कावेरी के बहुत बड़े हिस्से में जलजीवन समाप्त होने लगा है । जलजीवों की बहुत सी प्रजातियाँ अब उनमें खत्म हो गई हैं । कर्नाटक की एक और नदी तुंगभद्रा पर भी खतरे के बादल मँडराने लगे हैं । बंगलौर के पास पानी का रंग काफी की तरह काला पड़ने लगा है । यही हाल कपिला, जीजारी, पैरियार, चालियार, कालू, दामोदर, लूनी और बाँदी का भी है और जब ये नदियाँ अपना प्रदूषित जल लेकर समुद्र में मिलती हैं तो वहाँ भी व्यापक असर पड़ता हैं और सारा वातावरण संक्रामक बन जाता है ।

एक औद्योगिक शहर मोदी नगर के हवा पानी तक में जहर घुल चुका है । वहाँ चार दर्जन से ज्यादा छोटे-बड़े कारखाने दिन रात हवा पानी को गंदा कर रहे हैं । स्टील, साबुन, चीनी, शराब, सिंथेटिक धागा, कागज, गैस

सम्पर्क सूत्र : डी-720, सरस्वती बिहार, दिल्ली-110034

तथा टायर वगैरह बनाने वाले इन उद्योगों के कचरों ने वहाँ की जमीन के नीचे तक का पानी खराब कर दिया है और प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड दर्शक बना देख रहा है।

ऐसी बात नहीं है कि हमारे माहौल पर प्रदूषण के नियन्त्रण हेतु कानून नहीं बनाये जाते हैं। पानी का प्रदूषण रोकने के लिये सर्वप्रथम 1974 में ही एक कानून बनाया गया था। उसके बाद इसमें कई परिवर्तन किये गये। बात पर्यावरण अदालतों तक पहुँची। प्रदूषण की रोकथाम के लिए कठोर कानूम भी सामने लाये गये, लेकिन यह कैंसर की तरह बढ़ता ही रहा हैं।

आज हमारे समाज का सच यह हो गया है कि पर्यावरण को बचाने के लिए नये-नये कानून बनाये जा रहे हैं, लेकिन विकास की धारणाएँ और उन धारणाओं को पालने-पोसने वाली इस जीवन शैली में कानून महत्वपूर्ण होकर रह जाते हैं और तो और इस समस्या के समाधान के लिये जो हल सुझाये या दिखाये जाते हैं, वे कुछ दिन बाद स्वयं एक नई समस्या बन कर सामने खड़े हो जाते हैं।

यमुना के प्रदूषण को रोकने के लिये आज से चार वर्ष पूर्व एक उच्चस्तरीय समिति बनाई गई थी। इसने कई सुझावों के साथ एक रिपोर्ट तैयार की थी जिसे बाद में अनुमोदन के लिये 'शहरी विकास मन्त्रालय' को भेजा गया था। मन्त्रालय ने समिति के सुझावों को गम्भीरती से नहीं लिया। लिहाजा यमुना में बढ़ रहे प्रदूषण को रोकने के लिये प्रभावी ढँग से कुछ भी नहीं किया जा सका। राजधानी में जब सरकार और केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की नाक के नीचे दिल्ली की यह स्थिति है तब देश के और दूशरे शहरों की क्या स्थिति होगी?

गंगा उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल से होकर बहती है। इसके थाले में 692 छोटे-बड़े शहर बसे हैं। सरकारी आकलन के अनुसार गंगा का तीन चौथाई पानी इन नगरों की गंदगी के कारण प्रदूषित हुआ है। गंगा सफाई अभियान के अन्तर्गत मात्र एक लाख से ऊपर आबादी वाले 27 नगरों को लिया गया और शेष नगरों को छोड़ दिया गया। वाराणसी में जून 14, 1986 को फ्रांस की सीन नदी का पानी गंगा में मिलाकर जिस नाटकीयता के साथ गंगा कार्य योजना की शुरुआत की गई थी, वह एक अनबुझ पहेली बन कर ही रह गई, क्योंकि गंगा का प्रदूषण तो बढ़ता ही रहा।

केन्द्रीय जल आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि अगर शीघ्र असरदार कदम नहीं उठाये गये तो भविष्य में देश को जल प्रदूषण के साथ पीने के पानी की समस्या से भी जूझना होगा। रिपोर्ट में कहा गया हैं कि बढ़ते जल प्रदूषण को रोकने के लिए फौरन कुछ नहीं किया तो घरों में पीने का पानी मिलना भी कठिन हो जायेगा। आयोग का मानना है कि केवल कानूत बनाना ही काफी नहीं हैं, इसे ईमानदारी से लागू भी किया जाना चाहिये। लोगों को सचेत किया जाना चाहिये कि पर्यावरण को साफ रखने में उनकी क्या भूमिका है? अगर नदियों में इसी तरह जहर मिलता रहा तो इसकी कितनी बड़ी कीमत समाज को चुकानी पड़ सकती है इसका अनुमान तक लगा पाना अभी कठिन है।

●●

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

'विज्ञान' का अक्टूबर अंक विलम्ब से छप पाया। प्रेस की कठिनाई थी। आप सभी को जो असुविधा हुई उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। इधर 2-3 अंक संभवतः अनियमित रहें। आर्थिक सीमाओं के कारण हम छपाई की अच्छी व्यवस्था करने में असमर्थ हैं। आप से भी बात-चीत का सिलसिला टूट-सा गया।

आपको स्मरण होगा कि भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के आर्थिक सहयोग से सितम्बर 1989 में विज्ञान परिषद् प्रयाग में 6-11 और 11-16 आयु वर्ग के बच्चों के लिए हिन्दी विज्ञान लेखकों की एक6 दिवसीय कार्यशाला का आयोजन हुआ था। इस में प्रतिभागियों ने जो आलेख प्रस्तुत किये थे, उन्हें मैसूर भेज दिया गया था। अक्टूबर में भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर आलेखों का पुस्तकाकार प्रकाशन के लिए, आलेखों के चुनाव, सम्पादन और प्रेस कापी तैयार करने के लिए 8 दिनों के लिए डॉ० शिवगोपाल मिश्र और मुझे मैसूर बुलाया था। आप सभी को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि भारतीय भाषा संस्थान ने उनके प्रकाशन का दायित्व स्वीकार कर लिया है।

नवम्बर माह में 4-6 भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र ट्राम्बे, बम्बई में संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन, भारतीय भाषा संस्थान मैसूर के सहयोग से हुआ है। परिषद से इस कार्य शाला में भाग लेने मैं और परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ० मुरारी मोहन नर्मा जा रहे हैं। इस प्रकार विज्ञान परिषद् अन्य परिषदों और संस्थानों के न केवल संपर्क में है, वरन् उन्हें आम जनता तक विज्ञान के प्रकाश को ले जाने में सहयोग भी कर रहा है।

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी परिषद् कैम्पस में स्थित कुटिया 'ऋतंभरा' में ही रह रहे हैं। दिनों दिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। स्वामी जी का स्वास्थ्य हम सभी के लिए चिंता का विषय है।

विज्ञान परिषद् प्रयाग की एक शाखा अब जोधपुर में भी खुल गई है। 33 सदस्य हो चुके हैं और सदस्य संख्या बढ़ने की भी आशा ह। इस शाखा के खुलने से विज्ञान परिषद् का कार्य क्षेत्र पहले से अधिक व्यापक हो गया है।

इधर पत्रिका के स्तर को सुधारने का हमारा प्रयास फलीभूत नहीं हो पा रहा है। एक निवेदन है। कृपया पर्यावरण पर आलेखन भेजें। हम पहले ही काफी साहित्य प्रकाशित कर चुके हैं। विज्ञान कवितायें भी हमें न भेजें। हमें खेद के साथ कहना पड़ रहा है, कि इस दिशा में किया गया प्रयोग भी सफल नहीं रहा, क्योंकि हमें स्तरीय कविताएँ नहीं मिल पाईं। किन्तु आपके सामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक और चिंतनपरक लेखों का पत्रिका स्वागत करेगी।

एक बार पुनः क्षमा याचना सहित।

आपका

प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय

विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1992

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।

(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1992 से दिसम्बर 1992 माह के बीच प्रकाशित हो।

(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।

(7) विज्ञान-परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

(8) वर्ष 1992 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1993 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उत्तरप्रदेश, बम्बई, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद वा रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिये नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाओं का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय; तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु० : वार्षिक 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे,

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002